ॐ

श्री नारायण स्वामीजी

* ओ३म् *

# मृत्यु और परलोक

अर्थात्

शरीर अन्तःकरण तथा जीव का स्वरूप और भेद जीव और सृष्टि की उत्पत्ति का प्रकार मृत्यु का स्वरूप तथा बादकी गति, मुक्ति और स्वर्ग नरकादि लोकों का स्वरूप, मेस्मरइज़्म और रूहोंके बुलाने आदिके रोचक प्रकार और ब्रह्मचर्यादि विषयों पर नये ढंग पर एक अद्भुत पुस्तक।

लेखक—

**श्री नारायण स्वामीजी महाराज**

प्रकाशक—

**आर्य्य पुस्तकालय,**

बाँकीपुर, पटना

सातवीं बार ]   १९२९   [ मूल्य ॥|=)

प्रकाशक—

आर्य्य पुस्तकालय

बांकीपुर-पटना।

पुस्तक का प्रचार करके संसार में शांति फैलाइए, जिससे स्वामीजीका श्रम सफल हो

मुद्रक—

पं० देवीदयाल बाजपेई

पंचानन प्रेस, सप्तसागर, काशी।

* ओ३म् *

# * भूमिका *

नेक सज्जन चिरकाल से आग्रह करते चले आ रहे थे कि मुझे कोई ऐसी पुस्तक लिख देनी चाहिए, जिसे विशेषकर ऐसे समय में पढ़कर पढ़नेवाले शान्ति उपलब्ध किया करें, जब परिवार में दुर्भाग्य से मृत्यु होने या ऐसी ही किसी अन्य आपत्ति के आने से वे दुःखों में फँसे हुआ करें।

दूसरे प्रकार के कुछ सज्जनों ने इच्छा प्रकट की, कि मरने के बाद क्या होता है, इस विषय पर प्रकाश पड़ना चाहिए। कोई कहते हैं कि मरने के बाद रूहें किसी लोक विशेष जाकर आबाद हो जाती हैं और वहां से बुलाने पर आ भी जाया करती हैं और अपने सन्देश भी दिया करती हैं, कोई कहते हैं कि मरने के बाद हमेशा के लिए मनुष्य अपने कर्मानुसार स्वर्ग या नर्क में चला जाया करता है। कोई कहते हैं कि प्राणियों को मरने के बाद अन्तिम निर्णयके लिए चिरकाल तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है, उसके बाद निर्णय दिवस आने पर उनका इन्साफ़ होता है और वे उसी इन्साफ़ के अनुकूल दोज़ख़ और बहिश्त में जाया करते हैं। इसी प्रकार की अन्य बातें भी कही

जाती है। परन्तु असल बात क्या है, इसका पता नहीं चलता इसी लिए दूसरे प्रकार के सज्जनों ने भी एक पुस्तक लिख देने के लिए इसरार किया। दोनों प्रकार के आग्रह जारी रहे। परन्तु उनकी पूर्ति के लिए बहुत दिनों तक कुछ भी न कर सका, अवश्य इस बीच में, मरने के बाद क्या होता है और परलोक आदि के सम्बन्ध में अनेक पुस्तक देखने का अवसर प्राप्त हुआ। अन्त में मित्रों की बात को भी बहुत दिनों तक टालना उचित प्रतीत नहीं हुआ। इसके सिवाय अनेक पुस्तकों के देखने से जो तरह तरह की बातें परलोक के सम्बन्ध में उनमें लिखी हुई मिलीं, उनके लिए कुछ न लिखना भी अच्छा नहीं मालूम हुआ। इन्हीं कारणों से एक पुस्तक का लिख देना निश्चय करके लिखना शुरू कर दिया गया, परन्तु मेरे जैसे व्यक्ति से जिसके ज़िम्मे अनेक प्रकार के कार्य्यभार हों, यह आशा नहीं की जा सकती थी कि मैं शीघ्रता से पुस्तक को समाप्त कर दूँगा। हुआ भी यही, पुस्तक के समाप्त करने में तीन वर्ष से अधिक समय लग गया। फिर भी किसी न किसी प्रकार पुस्तक समाप्त होगई और अब पाठकों के हाथों में जा रही है। पुस्तक के सम्बन्ध में एक बात कह देना आवश्यक है। मरने के बाद क्या होता है, इसे ईश्वर या मरने वाले के के सिवा तीसरा कोई नहीं जान सकता। इसी लिए इस विषय में इतने और ऐसे अनोखे मतों की भरमार है कि जिन सबकी समालोचना करना तो दूर किनार, उनका उल्लेख कर देना भी

कठिन है। इस प्रकार के अनेक मत हैं सही परन्तु इस बच में वही सिद्धान्त अधिक माननीय हो सकता है जो अधिक से अधिक पुरुषों को ग्राह्य हो और बुद्धि पूर्वक ज्ञात पड़े। बस इसी बात को दृष्टि में रख कर इस पुस्तक के पढ़नेसे, विश्वास है कि किसी को भी निराश न होना पड़ेगा। पुस्तक में अन्य भी अनेक सिद्धान्तों पर प्रसंग वश विचार किया गया है, जिनके अनुकूल दृष्टिकोण रखने से प्रत्येक व्यक्ति हृदय में शान्ति का सञ्चार कर सकता है।

पुस्तक के तैयार करने में स्वाभाविक था कि अन्य पुस्तकों से सहायता ली जाती, तदनुकूल सहायता ली गई है। जहाँ २ सहायता ली गई है, पुस्तक और उनके रचयिताओं के नाम फुट नोटों में दे दिए गए हैं। यहाँ मैं उन सभी महानुभावों जिनकी पुस्तकों से सहायता ली गई है धन्यवाद देता हूं।

पुस्तक के पढ़ने से यदि किन्हीं दुःखित हृदय नर-नारियों को शान्ति प्राप्त हुई या किन्हीं जिज्ञासुओं का समाधान हुआ, तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूंगा।

नारायण आश्रम
रामगढ़,
श्रावण १७-८ सं० १९८५ वै०

**नारायण स्वामी**

*ओ३म्*

# विषय-सूची



## पहला अध्याय

### पहला परिच्छेद



### दूसरा परिच्छेद



### तीसरा परिच्छेद

* दूसरा संघ *



### चौथा परिच्छेद

# दूसरा अध्याय

## पहला परिच्छेद

चौथा संघ

| सं० | विषय | पृष्ठ |
|---|---|---|

दूसरा परिच्छेद



## तीसरा परिच्छेद

पांचवां मंत्र

चौथा परिच्छेद

* छठा संत्र *

# मरने के बाद की तीसरी गति

पांचवां परिच्छेद

सातवां संघ

## अमैथुनि सृष्टि का व्याख्यान

छठा परिच्छेद

## ● मुक्ति का आनन्द ●



सांतवां परिच्छेद

आठवा संघ

## ● जागृत स्वप्न और सुषुप्ति ●



# तीसरा अध्याय

पहिला परिच्छेद

नवां संघ

## "रूहों का बुलाना"

सं० विषय पृष्ठ

## दूसरा परिच्छेद

### ❀ रूहों के बुलाने के साधनों का विवरण ❀

| सं० | विषय | पृष्ठ |
|---|---|---|

# चौथा परिछेद

## दसवां संघ

### रूहों का बुलाना



पांचवां परिच्छेद

## ❀ रूहों का बुलाना ❀

# चौथा अध्याय ।

## पहला परिच्छेद

ग्यारहवां मंत्र

## अन्तिम कर्त्तव्य



दूसरा परिच्छेद

## अन्तिम कर्त्तव्य

* ओ३म् *

# "मृत्यु और परलोक"

## पहला अध्याय।

### प्रथम परिच्छेद।

### प्रारम्भ

गंगातट पर एक सुन्दर तपोभूमि है। वृक्षोंकी शीतल छाया है। हरी २ दूब से सारी भूमि लहरा रही है। शीतल जल के सुहावने चश्मे जारी हैं। प्राणप्रद वायु मंदगति से बह रहा है। रंग विरंग के फूल खिल रहे हैं। फलवाले वृक्ष फलों से लदे हुए हैं। तरह २ के पक्षी इधर उधर चहचहा रहे हैं। निदान सारा बन प्राकृतिक दृश्यों से भरपूर होकर भक्ति और वैराग्य का शिक्षणालय बना हुआ है। पवित्र और पुण्यभूमि में एक ऋषि जिनका शुभ नाम "आत्मवेत्ता" ऋषि है, बास करते हुए तपोमय जीवन व्यतीत करते हैं। ऋषि आत्मज्ञानी हैं, आत्मरत हैं, वेदों का मर्म जानते हैं, उपनिषदों के रहस्यों की जानकारी रखते हैं और सदैव आत्मचिंता में निमग्न रहते हैं। अपना जीवन अपने ही उपकार में लगाने के अभ्यासी नहीं, अपितु परोपकार-वृत्ति उनके हृदय में उच्च स्थान रखती है, और इसी वृत्तिको क्रियात्मक रूप देने के लिए सप्ताह में एक बार सत्संग से लाभ उठाने का अवसर सर्वसाधारणको दिया करते हैं। सैकड़ों गृहस्थ नर-नारी वानप्रस्थी और ब्रह्मचारी सत्संग से लाभ उठानेके लिए

प्रति सप्ताह उनकी सेवामें उपस्थित हुआ करते हैं। सत्संगों का कार्यक्रम यह होता है कि प्रथम जिन्हें कुछ पूछना गछना या दुख सुख कहना होता है पूछते या कहते हैं। ऋषि उनका उचित समाधान कर दिया करते हैं और जब सत्संग में एकत्रित पुरुष कुछ पूछते नहीं, किन्तु कुछ उपदेश ही सुनना चाहते हैं, तब उन्हें कुछ शिक्षाप्रद उपदेश ही कर दिया करते हैं।

दूसरा परिच्छेद।

## "एक सत्संग की कथा"

जान्हवी तट पर ऋषि आत्मवेत्ता व्यासगद्दी पर विराजमान हैं, और सैकड़ों नरनारी उनके संग से लाभ उठाने के लिए उनके सामने बैठे हैं. आज के संग में दुर्भाग्य से अनेक नरनारी ऐसे ही एकत्रित हैं, जो दुःखों से पीड़ित हैं, और अपनी दुःखकथा सुनाकर कर्तव्य की शिक्षा लेने की चिन्ता में हैं, ऋषि की आज्ञा पाकर उन्होंने, अपने संतप्त हृदयों का गुबार निकालने के लिये, अपनी दुःख कथा सुनानी प्रारंभ की-

**रामदत्त**—महाराज! मेरा हृदय पुत्रशोक से व्याकुल हो रहा है, चालीस वर्ष की आयु तक हम स्त्री पुरुष सन्तान के मुँह देखने का सौभाग्य प्राप्त नहीं कर सके थे। चालीस वर्ष की आयु होने पर एक पुत्र हुआ, वही एक-मात्र सन्तान थी। बड़े यत्न से उसे पाला पोसा। शिक्षा का प्रबन्ध किया। अब उसकी आयु १८ वर्ष की थी और बनारस विश्वविद्यालय में पढ़ता था, एफ० ए० की परीक्षा पास कर चुका था, बी० ए० के पहिले वर्ष में आया ही था कि अचानक प्लेग ने आकर घेर लिया। अनेक चिकित्साएं कीं, अनेक उपाय किये, परन्तु

कुछ भी कारगर न हुआ, तीसरे दिन ही प्राण पखेरू अस्थि-पञ्जर रूप पिंजरे को छोड़ कर उड़ गये—मृत्यु के अन्यायी हाथों ने हम पर ज़रा भी दया नहीं की ! इस बुढ़ापे में हमारे बुढ़ापे की लाठी, हमारे सर्वस्व का अपहरण करके हमको तड़फता ही छोड़ दिया, किसी प्रकार शव का दाह कर्म किया अब उसकी माता उसी दिन से जलहीन मीन की तरह तड़फ रही है, न खाती है, न पीती है, कभी कभी वेसुध भी हो जाती है। इसी हालत में उसे छोड़ कर आया हूँ कि आप से यह बीती कथा कहूँ, आप अनुग्रह करके बतलायें कि क्या करें जिससे चित्त की व्याकुलता दूर हो और हम फिर शान्ति का मुंह देख सकें। ( रामदत्त की कथा समाप्त ही हुई थी कि एक दूसरी ओर से एक स्त्री के रोने की आवाज आई। सब का ध्यान उधर हो गया और दयालु ऋषि ने सान्त्वना देकर उस का हाल पूछा )

**कृष्णादेवी**—( किसी प्रकार धैर्य धारण करके उसने अपना हाल सुनाना शुरू किया)। मेरी आयु इस समय केवल ३० वर्षकी है,१२ वर्षकी आयु में विवाह हुआ था, २० वर्षकी नहीं होने पाईथी की सास औरससुर दोनोंका देहान्त होगया एक पुत्र हुआ था । ८ वर्ष का होकर वह भी चल बसा। उसके दुःख को हम भूले भी नहीं थे कि तीन दिन हुए, जब स्वामी रोग-ग्रस्त हुए, उन्हे ऐसा घातक ज्वर चढ़ा, जिसने पीछा ही नहीं छोड़ा, उन्हें सन्निपात हुआ, बहकी बहकी बातें करते, शय्या छोड़ कर भागते, डाक्टरों ने देखा, हकीमों ने देखा, सभी ने कुछ न कुछ दवाइयां दीं, परन्तु फल कुछ न हुआ, कल प्रातःकाल मुझे रोने और वैधव्य जीवन का दुःख

भोगने के लिये छोड़ कर चल दिये ! अब मैं सारे घर में अकेली रह गई, क्या करूं, कहां जाऊं, चित्त ठीक नहीं, ठिकाना नहीं, रह रह कर यही जी में आता है कि कुछ खाकर सो रहूं, जिस से यह दुःख का जीवन समाप्त हो जावे। (कठिनता से कृष्णा इतना कहने पाई थी कि फिर आंखों से आंसुओं की धारा प्रवाहित हो गई और हिचकियों ने तांता बांध दिया, किसी प्रकार उसे लोग तसल्ली दे रहे थे कि एक ओर से फिर रोने का शब्द सुनाई दिया और सब उधर देखने लगे, देखा तो मालूम हुआ कि दो थोड़ी थोड़ी आयु के भाई और बहिन रो रहे हैं। कुछ सज्जनों ने उन बालकों को प्रेम से उठा कर ऋषि के सामने बिठलाया और पूछने पर उन्होंने अपना हाल इस प्रकार सुनायाः—

**कृष्णाकान्त और सुभद्रा**—अभी हम दोनों अपनी अपनी शालाओं में शिक्षा पाते हैं और प्रारम्भिक श्रेणियों में ही हैं। हमारे माता और पिता जो हमारी बड़े प्रेम से पालना करते थे, कल अचानक विसूचिका-ग्रस्त हुए और दोनों का एक ही दिन में सफाया होगया, पड़ोसियों की सहायता से उनकी अन्त्येष्ठि की, अब हम दोनों अनाथ हैं, कोई रक्षा करने वाला नहीं, कोई नहीं जो दुःख सुख में हमारी सुध ले। वे बालक इतना ही कह चुके थे, फिर रोने लगे। उन्हें ऋषि ने ढाढ़स बंधाया और पीठ पर प्रेम से थपकी दी और बचन दिया कि तुम्हारी शिक्षा और रक्षा का प्रबन्ध हो जायगा, घबराओ मत। इसी बीच में एक और व्यक्ति आगे बढ़ा और नम्रता से निवेदन किया कि मुझे भी कुछ कहना है—आज्ञा पाकर उसने कहना आरम्भ कियाः—

जयसिंह—मैं अत्यन्त सुखी गृहस्थ था, मेरे दो पुत्र और एक पुत्री हैं, तीनों सुशील आज्ञाकारी और शिक्षा के प्रेमी हैं। भिन्न भिन्न शिक्षालयों में शिक्षा पाते हैं, मेरी पत्नी बड़ी विदुषी थी और गृहकार्य में बड़ी चतुर थी, मुझे जब बाहर यात्रा में अथवा कहीं और कुछ काम होता, तो मैं सदैव शीघ्र से शीघ्र घर आने का यत्न किया करता था, मेरा विश्वास और दृढ़ विश्वास था कि ज्योंही मैं घर पहुँचूंगा गृहपत्नी की मधुर वाणी सुनने और सुप्रबन्ध देखने से सारे कष्ट दूर हो जावेंगे और वास्तव में ऐसा होता भी था, इस प्रकार मैं समझा करता था कि मुझसे बढ़कर कोई दूसरा सुखी गृहस्थ न होगा, पर दुर्भाग्य से वह देवी मुझसे वियुक्त हो गई। कुछ दिन साधारण ज्वर आया था, इसी बीच में चौथे बालक का जन्म हुआ, परन्तु ज्वर ने उसका पीछा न छोड़ा, अभी बालक तीन महीने का भी पूरा नहीं होने पाया था, कि उसी ज्वर ने इतना विकराल रूप धारण किया कि गृहलक्ष्मी के प्राण लेकर ही पीछा छोड़ा, अब गृहदेवीके वियोगने मुझे पागल सा बना रखा है, जहां एक ओर गृहस्थ जीवन मिट्टी में मिला दिखाई देता है, तो दूसरी ओर तीन मासके बालक की रक्षाके विचार से मैं घुला सा जा रहा हूं। चित को बहुतेरा समझाता हूं कि सन्तान है, धन है बड़ा परिवार है, जिमींदारी है; इलाका है, सब कुछ है, सावधानी से रहना चाहिए, परन्तु ज्योंही वियुक्तादेवी का स्मरण आता है सारे विचारों पर पानी फिर जाता है और कोई वस्तु भी शान्ति देने में समर्थ नहीं होती और जब यत्न करता हूं कि उसका स्मरण ही न आवे, तो इसमें सफलता नहीं होती। स्मरण आता है और फिर आता

है, रोकने से स्मृति और भी अधिक वेगवती हो जाती है, यह दुःख है, जिससे मैं सन्तप्त हूं और यह संताप उठते, बैठते, सोते जागते, खाते, पीते, सभी समयों में मुझे दुःखी बना देता है, मैं क्या करूं, जिससे इस दुःख से निवृत्ति हो।

"सन्तोषकुमार"—( इसी बीच में बोल उठा- )

बड़ी बड़ी मिन्नतों के मानने से तो इस ६० वर्ष की आयु में पौत्र का मुह देखना था. परन्तु वह सुख तीन मास भी रहने नहीं पाया था कि पौत्र ने धोखा दिया और सारे परिवार को दुःखित करके चल दिया, यह दुःख है कि दूर होने में नहीं आता, हृदय में एक आग सी लग रही है, जिससे मैं जल भुन रहा हूं, शान्ति का कोसों पता नहीं।

राधाबाई—( १२ वर्ष की आयु की एक बाल विधवा रोती हुई ) निर्दयी माता पिता ने तीन वर्ष हुए जब मैं अबोध बालिका थी, सबोध तो अब भी नहीं हूँ—मेरा विवाह हत्यारे धन के प्रलोभन में पड़कर, एक ६० वर्ष के बूढ़े से कर दिया था जिसे देख कर सब उसे मेरा दादा ही समझते थे, दो वर्ष तो वह चारपाई पर पड़े पड़े खों खों करते हुए किसी तरह जीता रहा, थोड़ी दूर भी यदि चलना पड़ता तो लाठी टेक कर चलने पर भी हांफने लगता, मुह में दांत न थे, बात करते समय साफ बोल भी नहीं सकता था, यह हालत उसकी पीछे से नहीं हो गई थी, किन्तु विवाह के समय भी उसका यही हाल था। अब सप्ताह हुआ जब वह मर गया उसके मरने का तो मुझे कुछ भी दुःख नहीं हुआ था, परन्तु जब इधर उधर से नातेदार स्त्री-पुरुष एकत्र हुए और उन्होंने

मेरी अच्छी २ चूड़ियां, मेरे मना करने परभी तोड़ दीं, मेरे अच्छे वस्त्र और जेवर भी उतार लिये और सुन्दर बंधे हुवे बालों को भी खोल कर वखेर दिया और कहा कि तूने आते ही अपने पति को खा लिय और अब तू विधवा है, इसी अवस्था में तुझको सारी आयु व्यतीत करनी पड़ेगी, तब से मेरे दुःख का पारावार नहीं। यही एक आपत्ति नहीं किन्तु और भी अनेक दुःख हैं, कभी कोई दुष्ट स्त्री आकर धन झपटने के लिये तरह तरह की चिकनी चुपड़ी बातें बनाती हैं। कभी कोई दुष्ट पुरुष आकर मुझे कहता है कि विधवाओं को चारों धाम में जाकर तीर्थ का पुण्य प्राप्त करना चाहिये, यदि तू चले तो मैं तेरे साथ चल सकता हूँ, कभी कोई दुष्ट विधर्मी साधु के रूप में आकर मुझे फुसलाने का यत्न करताऔर कहता है कि यदि तू हिन्दू मत छोड़ दे तो तेरा निकाह अच्छे आदमी के साथ हो सकता है, कभी कोई विषयी आकर मेरे सतीत्व के नष्ट करने की चेष्टा करता है, इन और इसी प्रकार की अनेक आपत्तियों का मुझे प्रति दिन सामना करना पड़ता है, इन आपत्तियों में फंस कर मैं अत्यन्त दुःखित और पीड़ित हो रही हूं। रह रह कर अपनी अवस्था पर रोना आता है ( राधा इतना ही कह चुकी थी कि फिर रोने लगी, इसी बीच में एक और आदमी आया और अपनी कहानी सुनाने लगा।

**सीतला**—( एक दलित जाति का पुरुष ) अब की बार महाराज! हमारे गांवों में चेचक भयङ्कर रूप से फैली, सैकड़ों बालकों के सिवाय अच्छे२ जवान स्त्री पुरुष भी उसकी भेंट हो गए, किसी किसी तो बूढ़े को भी माता ( चेचक ) ने आकर मौत का सन्देश सुनाया। मेरे घर में भी चेचक का

प्रकोप हुआ और दो प्राणी उसकी भेंट हुए, एक तो छोटी लड़की थी और दूसरा जवान लड़का था। इन भयंकर मौतों ने घर में कुहराम मचा दिया। किसी को भी अपनी सुध बुध नहीं रही। आस पास के लोगों के कहने सुनने, समझाने, बुझाने से मैंने जी कड़ा किया और अपने को संभाल कर उनको श्मशान में ले जाकर अन्त्येष्टि करने की तय्यारी करने लगा। अपने छोटे भाई को बाजार भेजा कि जाकर अर्थी और कफन के लिए बांस और कपड़ा आदि ले आवे, उस पर जो कुछ बीती वह आप को सुनाता हूं :—

**सावन्ता**—( सीतला का छोटा भाई बाजार जाते हुए सीतला से बोला ) मैं बाज़ार जाता हूं, तुम ईन्धन को श्मशान में भिजवाने का प्रबन्ध करो ( यह कह कर सावन्ता चल दिया, अभी रास्ता चलना शुरू ही किया कि एक आदमी आकर डपट कर बोला )

**ब्राह्मण अय्यर**—( एक ऊंची जाति का ब्राम्हण ) ( ज़ोर से ) अरे, तू तो पञ्चम है, तू इस ब्राम्हणों के रास्ते पर कैसे आया ?

**सावन्ता**—मेरे घर में दो मौतें हो गई हैं, मुझे कफन के लिए कपड़ा ले जाने की जल्दी है, इसलिये आप कृपा करके इधर ही से जाने दें—

**ब्राम्हण अय्यर**—दो मौतें क्या तेरा सारा परिवार मर जावे तब भी तू इस रास्ते से नहीं जा सकता, क्या तेरे मुर्दों के कारण हम सब अपना प्रायश्चित करेंगे ?

**सावन्ता**—आप मेरे मुर्दों के कारण क्यों प्रायश्चित करेंगे

**सुब्राह्मणअय्यर**—तेरे इस रास्ते पर चलने से यह मार्ग अपवित्र हो जायगा और इस पर जितने भी उच्च जाति के लोग चलेंगे उन्हें सभी को शास्त्र की रीति से प्रायश्चित करना पड़ेगा, ( सावन्ता उसी मार्ग से कुछ आगे बढ़ा ही था कि अय्यर ने खींचकर एक लकड़ी उसके सिर पर मारी, जिससे उसका सिर फट गया और खून बहने लगा । सावन्ता इसी बुरी हालत में कुछेक राहगीरों की सहायता से बिना कपड़े लिये लौट आया और उसे इस हालत में देख कर आश्चर्य से लोगों ने सब हाल पूछा और उसकी दुःख की कहानी सुन वहां एकत्रित सभी पञ्चम अपने हिन्दू होनेसे घृणा करने लगे

**सीतला**—( उपर्युक्त आपत्ति की दास्तान सुनकर सीतला ने कहा ) महाराज ! एक दुःख तो घर में दो मरे हुओं का था ही, वही हमारे रोने के लिए कम न था, अब यह दूसरी मुसीबत भाई के जखमी होने से हमारे सिर पर और आगई उसकी मरहम पट्टी कराने के लिए जब कोई डाक्टर ( उच्च जाति का होने के कारण ) नहीं आया तो हमी सब ने अपनी ग्रामीण बुद्धि ( जानकारी ) के अनुसार मरहम पट्टी कर दी और उसे उसी ससकती हुई हालतमें छोड़ कर श्मशानकी ओर चले गए और दाह-कर्म करके लौटने भी न पाये थे कि रास्ते में दौड़ती और हांफती हुई स्त्री ने आकर खबर दी कि उस जख्मी भाई की भी मृत्यु हो गई, हम अभागे अब उसी अपने प्यारे और एक मात्र भाई का दाह-कर्म करके आ रहे हैं, घर में घुसने को जी नहीं चाहता, घर काटने को दौड़ता स

दिखाई देता है, इसीलिए महाराज घर न जाकर आपकी शरण में आया हूं। (आत्मवेत्ता ऋषि ने उसकी दुःखित अवस्था और उच्च जाति के हिन्दुओं के दलितों के साथ दुर्व्यवहार का स्मरण करते और दुःखित होते हुए सीतला को सान्त्वना देते हुये प्रेम से बिठलाया)।

इसके बाद भी सत्संग में एकत्रित पुरुष स्त्रियों में से किसी ने अपनी सम्पत्ति खो जाने की कथा सुनाई, किसी ने अभियोग में हार जाने की चर्चा की, जिसके परिणाम में अपना दरिद्र हो जाना वर्णन किया, किसी ने बन्धु बान्धवों के दुर्व्यवहार की शिकायत की, निदान इसी प्रकार के कथनोपकथन में संग का सारा समय समाप्त होगया, ऋषि के वचन सुनने का अवसर किसी को न मिला और क्रियात्मक रूप से आज का संग "मरसिया ख्वानों की मजलिस" ही बना रहा। आत्मवेत्ता ऋषि ने अगले संग में उपदेश देने का वचन देकर आज के संग का कार्य समाप्त करते हुए, संग में उपस्थित नर नारियों को इस प्रकार का आदेश दियाः—

**आत्मवेत्ता**-बड़ेसे बड़े दुःख, बड़ी से बड़ी मुसीबतके कष्ट, करुणानिधान, करुणाकर, करुणामय, प्रभु के स्मरण से कम होते हैं और जाते रहते हैं। वही असहायों का सहाय, निराश्रितों का आश्रय, निरावलम्बों का अवलम्बन है। दुनियां के बड़े २ वैद्य, डाक्टर, राजा महराजा और साहूकार प्रसन्न होने पर केवल शारीरिक कल्याण का कारण बन सकते हैं, परन्तु मानसिक व्यथा से व्यथित नर नारी के शान्तिका कारण तो वही प्रभु है, जो इस हृदय मन्दिर में विराजमान है और दुनियां के लोगों की तरह उसका सम्बन्ध मनुष्यों के केवल

शारीरिक नहीं, किन्तु मानसिक और आत्मिक भी है, वही है, जो गर्भ में जीवों की रक्षा करता है, वही है, जो वहां कीट पतंगों तक की भी करता है, जहां मनुष्यों की बुद्धि भी नहीं पहुंच सकती एक पहाड़ का भाग सुरंग से उड़ाया जाता है, पहाड़ के टुकड़े २ हो जाते हैं, एक टुकडे के भीतर देखते हैं कि एक तुच्छ कीट है, जिसके पास कुछ दाने अन्न के भी पड़े हैं, बुद्धि चकित हो जाती है, तर्क काम नहीं देता, मन के संकल्प विकल्प थक जाते हैं, यह कैसा चमत्कार है, हम स्वप्न तो नहीं देख रहे हैं? भला, इस कठोर हृदय पत्थर के भीतर यह कीट पहुंचा तो पहुंचा कैसे? और उसको वहां ये दाने मिले तो मिले कैसे? कुछ समझ में नहीं आता, मनुष्य के जब अन्तःकरण थक जाते हैं और काम नहीं करते, तो वह आश्चर्य के समुद्र में डुबकियां लेने लगता है, अन्त में तर्क और बुद्धि का हथियार डालकर मनुष्य बेसुधसा हो जाता है। अनायास उसका हृदय श्रद्धा और प्रेम से पूरित हो गया, ईश्वर की इस महिमा के सामने सिर झुक पड़ा और हृदय से एक साथ निकल पड़ा कि प्रभु! आप विचित्र हो, आपके कार्य भी विचित्र हैं!

आपकी महिमा समझनेमें बुद्धि निकम्मी और मन निकम्मा बन रहा है, आपही अन्तिम ध्येय और आश्रय हो, आप के ही आश्रय होने से दुःख दुःख नहीं रहते। कष्ट, कष्ट नहीं प्रतीत होते। आपके ही आश्रय में आने से संग के इन नर नारियों के भी कष्ट दूर होंगेः—

(आत्मवेत्ता इतना ही कहने पाये थे कि संघ में से एक भक्त का हृदय गद्गद् हो गया, आंखों से प्रेम के आंसू बहने लगे प्रेम में मग्न होकर अत्यन्त मधुर स्वर से हृदय के भीतरी

तह में निहित भावों को गाकर प्रकट करने लगा, और संग में उपस्थित समस्त नरनारी कुछ इस प्रकार से मग्न हो गये कि प्रत्येक को अपना दुःख कम होता दिखाई देने लगा ):—

## श्लोक

एक भक्तः—

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देव देव॥
त्वमेकं शरण्यं त्वमेकं वरेण्यं, त्वमेकं जगत्पालकं स्वप्रकाशम्।
त्वमेकं जगत् कर्तृ पातृ प्रहर्तृ, त्वमेकं परं निश्चलं निर्विकल्पम्

## भजन

पितुमातु सहायक स्वामि सखा, तुमही एक नाथ हमारे हो।
जिनके कछु और अधार नहीं, तिनके तुमहीं रखवारे हो॥
प्रतिपाल करो सिगरे जग को, अतिशय करुणा उर धारे हो।
भूलि हैं हमहीं तुमको तुम तो, हमरी सुधि नाहिं बिसारे हो।
उपकारन को कछु अन्त नहीं, छिन ही छिन जो विस्तारे हो॥
महाराज महा महिमा तुम्हरी, समझे बिरले, बुध वारे हो॥
शुभ शान्ति निकेतन प्रेम निधे, मन मन्दिर के उजियारे हो।
यहि जीवन के तुम जीवन हो, इन प्राणन के तुम प्यारे हो॥
तुम सों प्रभु पाय 'प्रताप' हरि, केहि के अब और सहारे हो॥

तीसरा परिच्छेद।

## दूसरा सङ्घ

संघके सङ्गठित हो जाने पर सभी नर नारी ऋषि बचन सुनने के जिज्ञासु हुये, तब आत्मवेत्ता ऋषि ने प्रतिज्ञानुसार उपदेश प्रारम्भ किया—

"जगत् स्वार्थ मय है"

**आत्मवेत्ताऋषि**—जगत् में प्राणियों के वियुक्त होने पर जो दुःख अवशिष्ट परिवार को हुआ करता है, उसका हेतु यह नहीं होता कि वियुक्त प्राणी उन्हें बहुत प्रिय था बल्कि असली कारण यह होता है कि वियुक्त प्राणियों के साथ अवशिष्ट परिवार के स्वार्थ, जुड़े थे, और वियोग स्वार्थ-सिद्धि में बाधक होता है, बस असली दुःख इतना ही होता है कि स्वार्थ-हानि हुई। जिसे पुत्र का शोक है, वह केवल इसलिये कि उसने पुत्र को बुढ़ापेकी लाठी समझ रक्खा था। पुत्र क्या मरा, मानो उसके बुढ़ापे की लाठी छिन गई। अब चिन्ता केवल इस बात की है कि बुढ़ापे में सहारा कौन देगा। जिसे माता पिता का दुःख है, वह भी अपने ही स्वार्थ के लिए कि अब उसका पालन पोषण कौन करेगा। जिसे स्त्री का दुःख है वह भी केवल अपने ही स्वार्थ के लिए कि जो सुख स्त्री से मिला करता था, वह अब नहीं मिलेगा। अतः यह स्पष्ट है कि जिसे मृत्युका शोक कहते हैं, वह शोक असल में बन्धु बान्धवों के लिए नहीं, किन्तु अपने ही स्वार्थ में बाधा पहुंचने से किया जाता है।

"याज्ञवल्क्य का उपदेश"

याज्ञवल्क्य ने अपनी पत्नी और मैत्रेयी को यही उपदेश कितने सुंदर शब्दों में दिया थाः—

---

(१) नवा अरे पत्युः कामाय पति प्रियो भवति,
आत्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति ॥१॥
नवा अरे जायायै कामाय जाया प्रिया भवति,
आत्मनस्तु कामाय जाया प्रिया भवति ॥२॥

नवा अरे पुत्राणां कामाय पुत्राः प्रिया भवन्ति,
आत्मनस्तु कामाय पुत्राः प्रिया भवन्ति ॥३॥
नवा अरे वित्तस्य कामाय वित्त प्रियं भवति,
आत्मनस्तु कामाय वित्तं प्रियं भवति ॥४॥
नवा अरे ब्राम्हणः कामाय ब्रह्म प्रियं भवति,
आत्मनस्तु कामाय ब्रह्म प्रियं भवति ॥५॥
नवा अरे क्षत्रस्य कामाय क्षत्रं प्रिय भवति,
आत्मनस्तु कामाय क्षत्रं प्रियं भवति ॥६॥
नवा अरे लोकानां कामाय लोकाः प्रिया भवन्ति,
आत्मनस्तु कामाय लोकाः प्रिया भवन्ति ॥७॥
नवा अरे देवानां कामाय देवाः प्रिया भवन्ति,
आत्मनस्तु कामाय देवाः प्रिया भवन्ति ॥८॥
नवा अरे भूतानां कामाय भूतानि प्रियाणि भवंति
आत्मनस्तु कामाय भूतानि प्रियाणि भवन्ति ॥९॥
नवा अरे सर्वस्व सर्वं कामाय प्रियं भवति,
आत्मनस्तु कामाय प्रियं सर्वं भवति ॥१०॥

( बृहदारण्यकोपनिषद् ४।५।६ )

"याज्ञवल्क्य"--अरे मैत्रेयि ! निश्चय पति की कामना के लिए पत्नी को पति प्रिय नहीं होता, किन्तु अपनी कामना के लिए पति प्रिय होता है ॥१॥

निश्चय भार्या की कामना के लिए पति को भार्या प्रिया नहीं होती किन्तु अपनी कामना के लिए ही भार्या प्रिया होती है ॥२॥

निश्चय पुत्रों की कामना के लिए ( माता पिता को ) पुत्र प्रिय नहीं होवे; किंतु अपनी कामना के लिए ही पुत्र प्रिय होते हैं ॥३॥

निश्चय धन की कामना के लिए (मनुष्य को) धन प्रिय नहीं होता, किंतु अपनी कामना के लिए धन प्रिय होता है ॥४॥

निश्चय ब्राह्मण की कामना के लिए (मनुष्य को) ब्राम्हण प्रिय नहीं है, किन्तु अपनी कामना के लिए ब्राम्हण प्रिय होता है ॥५॥

निश्चय क्षत्री की कामना के लिए (मनुष्य को) क्षत्रिय प्रिय नहीं होता, किन्तु अपनी कामना के लिए क्षत्रिय प्रिय होता है ॥६॥

निश्चय लोकों की कामना के लिए (मनुष्य को) लोक प्रिय नहीं होते, किन्तु अपनी कामना के लिए ही लोक प्रिय होते हैं ॥७॥

निश्चय देवों की कामना के लिए (मनुष्य को) देव प्रिय नहीं होते किन्तु अपनी कामना के लिए देव (विद्वान) प्रिय होते हैं ॥८॥

निश्चय भूतों (प्राणी-अप्राणी) की कामना के लिए (मनुष्य को) भूत प्रिय नहीं होते, किन्तु अपनी कामना के लिए ही प्रिय होते हैं ॥९॥

निश्चय सब की कामना के लिए (मनुष्य को) सब प्रिय नहीं होते, किन्तु अपनी कामना के लिए ही सब कुछ प्रिय होते हैं ॥१०॥

"मृत्यु का दुःख"

**आत्मवेत्ता**—इस सम्पूर्ण उपदेश का सार यही है कि समस्त प्राणी और अप्राणी केवल अपनी ही कामना के लिए मनुष्य को प्रिय होते हैं। यदि मनुष्य में किसी प्रकार से यह योग्यता आजाये कि वह अपने सम्बन्धियों, स्त्री-पुत्रादि, के

साथ जो उसने कामना जोड़ी हुई है, उसे पृथक् कर लेवे, तो क्या उस समय भी मनुष्य को किसी की मृत्यु का दुःख हो सकता है। इसका निश्चित उत्तर यह है कि फिर दुःख कैसा? दुःख तो सारा स्वार्थ हानि ही का होता है-यदि वियुक्त और अवशिष्ट दोनों के बीच में स्वार्थ का सम्बन्ध न हो, तो फिर किसी को मृत्यु क्लेशित नहीं कर सकती। जगत् में प्रति दिन सहस्रों मनुष्य उत्पन्न होते और मरते हैं। परन्तु हमें न उनके पैदा होने का हर्ष होता है और न उनके मरने का शोक। क्यों हर्ष और शोक नहीं होता? कारण स्पष्ट है कि उनकी उत्पत्ति के साथ हम स्वार्थ का सम्बन्ध नहीं जोड़ते, इसलिए उनके जन्म का हमें कुछ भी हर्ष नहीं होता और चूंकि उनके जीवनों के साथ हमारा स्वार्थ भी जुड़ा हुआ नहीं होता, इसलिए उनके जीवनों की समाप्ति ( मृत्यु ) का भी हमें कुछ शोक नहीं होता। न्यूयार्क, लण्डन, पैरिस, आदि नगरों में प्रतिदिन सैकड़ों मनुष्य मरा करते हैं, क्यों हम उनका मातम नहीं करते? केवल इसी लिए कि उनसे हमारे स्वार्थ का कुछ भी सम्बन्ध नहीं होता। परन्तु न्यूयार्क आदि नगरों में सैकड़ों मनुष्य होंगे, जो उनके मरने का शोक करते होंगे। क्यों शोक करते हैं? इसलिए कि उनका स्वार्थ उन मरनेवालों के साथ जुड़ा हुआ होता है। निष्कर्ष यह है कि मृत्यु-शोक का कारण स्वार्थ और एक मात्र स्वार्थ है-इसलिए स्वार्थ क्या है, इस पर थोड़ा विचार करना होगा-

———:o:———

चौथा परिच्छेद।

# स्वार्थ मीमांसा

**आत्मवेत्ता**—स्वार्थ का तात्पर्य है (स्व × अर्थ) अपनी कामना, अपनी गरज-"स्व" (*Self*) और आत्मा पर्य्याय वाचक हैं-दोनों का एक ही अर्थ है, इसलिए 'अपना अर्थ' या 'अपनी आत्मा का अर्थ' इन में कुछ अन्तर नहीं है, यह दोनों समानार्थक पद है।

स्वार्थ तीन प्रकार का है:--

'स्वार्थ के भेद"

(१) उत्कृष्ट (२) मध्यम (३) निकृष्ट। (१) उत्कृष्ट स्वार्थ वह है, जिसमें आत्मा स्वच्छरूप में रहकर अपने अर्थ की ओर प्रवृत्त होता है-(२)मध्यम स्वार्थ वह है-जिसमें आत्मा मन और इन्द्रिय से युक्त होकर सम्मिलित अर्थ की सिद्धि करता है-(३) निकृष्ट स्वार्थ वह, जिसमें आत्मा मन और इन्द्रिय से युक्त होकर ममता के वशीभूत होकर सम्मिलित अर्थ की सिद्धि करता है। निकृष्ट स्वार्थ वह है, जिससे मनुष्यको मृत्यु के दुःख से दुःखी होना पड़ता है। प्रत्येक प्रकार का स्वार्थ ठीक ठीक समझा जा सके, इसलिए उसका कुछ विवरण यहां दिया जाता है:—

"उन भेदों की व्याख्या"

आत्मा की दो प्रकार की वृत्ति होती है-एक का नाम है अन्तर्मुखी वृत्ति, दूसरे को वहिमुर्खी वृत्ति कहते हैं। अन्तमुखी वृत्ति का भाव यह है कि आत्मा केवल, आत्मा + परमात्मानुभव में रतहो, इसी को निदिध्यासन (Intuition or Realization) कहते हैं। इसी का नाम "श्रेय" या "निवृत्तिमार्ग" है। परन्तु जब आत्मा अपने भीतर नहीं, किन्तु बाहर काम

करता है, तब बहिर्मुखी वृत्ति वाला कहलाता है। उसका क्रम यह है कि आत्मा बुद्धि को प्रेरणा करता है, बुद्धि मन को, मन ज्ञानेन्द्रियों को गति देता है, इन्द्रियां विषय में प्रवृत्त हो जाती है, इसी को श्रवण और मनन कहते हैं, इसी का नाम "प्रेय" या "प्रवृत्ति मार्ग" है।

"प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्ग"

मनुष्य के लिए इन दोनों मार्गों की उपयोगिता है। यदि यह दोनो मार्ग ठीक रीति से काम में लाये जावें तो प्रवृत्ति मार्ग निवृत्ति का साधक होता है। उपनिषदों में जहां प्रवृत्ति मार्ग की निन्दा की गई है, उसका भाव केवल यह है कि जो मनुष्य केवल प्रवृत्ति मार्ग को ही अपना उद्देश बना कर निवृत्ति मार्ग की अवहेलना करते हैं, वे ही उपनिषदों की शिक्षानुसार तिरस्कार के योग्य होते हैं। इस बात को उपनिषदों ने असन्दिग्ध शब्दों में कहा है देखो--

न साम्परायः प्रतिभाति बालम्प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम्।
अयं लोको नास्ति पर इति मानी पुनः पुनर्वशमापद्यते मे॥
(कठोपनिषद् २। ६)

अर्थात् अज्ञानी पुरुषों को जो प्रमाद-ग्रस्त और धन के मोह से मूढ़ हो रहे हैं परलोक की बात पसन्द नहीं आती, ऐसे पुरुष जो केवल इसी लोक को मानने वाले (प्रवृत्ति मार्ग गामी) हैं और परलोक (निवृत्ति मार्ग) को नहीं मानते, उन्हें बार बार का मृत्यु का ग्रास बनना पड़ता है। परलोक का विचार छोड़ जो केवल इसी लोक को अपना सब कुछ समझने लगते हैं, उन्हें सांसारिक मोह जकड़ लेता है और मोह ग्रस्त होकर उन्हें अपने उद्देश्यसे भी पतित होजाना पड़ता है। इस विषयमें एक बड़ी शिक्षाप्रद आख्यायिका नारदकी है-

"नारद की आख्यायिका"

एक बार नारद ने कृष्ण महाराज की सेवा में उपस्थित हो कर उनसे आत्मज्ञान प्राप्त करना चाहा । महाराज ने उन्हें अधिकारी नहीं समझा और इसी लिए उन्हें आत्मोपदेश नहीं किया । दूसरे अवसर पर आकर नारद ने फिर वही प्रश्न किया । महाराज ने उत्तर न देकर नारद से कहा कि चलो कहीं भ्रमण कर आवें । नारद प्रसन्नता से रजामन्द हो गया और इस प्रकार दोनों चल दिये । कुछ दूर पहुँच एक ग्राम दिखाई दिया । कृष्ण ने नारद से कहा कि जाओ इस ग्राम से पीने को पानी ले आओ । नारद चले गये । एक कुएं पर पहुंचे, जहां कुछ स्त्रियां पानी भर रही थीं । उनमें एक अति रूपवती सुशीला कन्या भी थी । नारद ने उससे जल मांगा । उसने बड़ी प्रसन्नता से नारद को जल दिया । परन्तु नारद जल लेकर वहां से चले नहीं और जब वह कन्या जल लेकर अपने घर की ओर चली; तो उसके पीछे हो लिए । कन्याने घर पहुंच कर अपने पीछे नारद को आता देख कर समझा कि यह ब्रह्मचारी भूखा प्रतीत होता है, उसने आदर से नारद को बिठला कर भोजन कराया, परन्तु नारद भोजन करके भी वहां से नहीं टले । इसी बीच में कन्या का पिता जो कहीं बाहर गया हुआ था, लौट कर घर आया और उसकी नारद से भेंट हुई । जब बातें ढंग की होने लगीं, तब नारद ने सुअवसर समझ कर कन्या के पिता से कहा, कि इस कन्या का विवाह मेरे साथ कर दो । कन्या के पिता ने योग्य वर समझ कर विवाह कर दिया । उस कन्या के सिवा घर में और कोई बालक या स्त्री नहीं थी, इसलिये कन्या के पिता ने नारद से कहा कि यहीं रहो । नारद उसी घर में प्रसन्नता से रहने लगे । कुछ काल के बाद पिता का देहान्त होगया; अब यह युगल उस घर में

मालिक के तौर पर रहने लगे। गृहस्थधर्म्म का पालन करते हुये नारद के होते होते तीन पुत्र हो गये। इसी बीच में वर्षा अधिक होने से बाढ़ आगई और पानी गाँव में भी आ गया और ग्राम निवासी अपने अपने घर छोड़ कर जिधर तिधर जाने लगे। नारद को भी कहीं चलने की चिन्ता हुई और उन्होंने अपने छोटे दो बच्चों को कन्धों पर बिठला कर एक बड़े पुत्र को एक हाथ से पकड़ा और दूसरे हाथ से स्त्री का हाथ पकड़ कर पार होने के लिए पानी में चल दिये। पानी का जोर था, पुत्र अपने को सम्भाल नहीं सका, उसका हाथ नारद के हाथ से छूट गया और वह पानी में बह गया। नारद अपनी विवशता देख कर किसी प्रकार शन्तोष करके आगे चल दिये कि पानी ने फिर ढकेला और नारद गिरने को हुये परन्तु किसी तरह से उन्होंने अपने को तो सम्भाला परंतु इस संघर्ष में उनके कन्धों से बाकी दो पुत्र भी पानी में गिर कर बह गये।

अब उनके साथ केवल उनकी स्त्री रह गई। नारद को उन पुत्रों के बहने का दुःख तो बहुत हुआ परन्तु किसी प्रकार अपनी स्त्री और अपने जी को समझा कर आगे चल दिये कि स्त्री तो मौजूद ही है, और भी पुत्र हो जावेगे। जब वे दोनों युगल इस प्रकार जा रहे थे कि अचानक पानी की एक प्रबल झपेट ने स्त्री को भी बहा दिया। नारद बहुत हाथ पाँव मार कर किसी प्रकार पानी से निकल कर उसी स्थान पर पहुंचे जहां से कृष्ण महाराज के लिए पानी लेने को ग्राम को चले थे, तब उनका माया मोह छूटा और वह वहीं पश्चाताप करने लगे कि मैं ग्राम में किस काम के लिए गया था और वहां जाकर किस जगड्वाल में फंस गया। परन्तु "अब पछताये क्या होत है, जब चिड़ियां चुग गई खेत"।

आख्यायिका कितनी अच्छी शिक्षा देती है की मनुष्य जब उद्देश्य को भुला कर संसार के माया मोह में फंस जाता है तब उसकी ऐसी ही दुर्दशा होती है, जैसी नारद की हुई। इसलिए उपनिषद् ने शिक्षा यह दी है कि मनुष्य को श्रेय मार्ग को भुला कर केवल प्रवृत्ति मार्ग को अपना उद्देश्य नहीं बना लेना चाहिये। किंतु प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों को उनका उचित स्थान देना चाहिए। तभी मनुष्य का कल्याण हो सकता है।

इस पर कोई कह सकते हैं कि उपनिषदों ने जिस प्रकार प्रवृत्ति की निन्दा की है उसी प्रकार केवल निवृत्ति की निन्दा क्यों नहीं की? इसका समाधान यह है कि मनुष्य प्रवृत्ति में तो उत्पन्न ही होता है, वह उसे अनायास सिद्ध होती है। परन्तु निवृत्ति मार्ग यत्नाभाव से प्राप्त ही नहीं हो सकता। कोई मनुष्य सीधा निवृत्ति में नहीं जा सकता, उसे सदैव प्रवृत्ति से ही निवृत्ति में जाना पड़ता है। जब कोई प्रारम्भ से निवृत्ति-पथगामी हो ही नहीं सकता, तो फिर केवल निवृत्ति पथ के लिए उपनिषदों का कुछ कहने की आवश्यकता ही क्या हो सकती थी।

**सन्तोष कुमार**—फिर क्यों यम ने नचिकेता से कहा कि "विद्याभीप्सिनं नचिकेतसंमन्ये" अर्थात् मैं नचिकेता को श्रेय (निवृत्ति पथ गामी मानता हूं!

**आत्मवेत्ता**—इसका भाव यह है कि यम ने नचिकेता को समझा, कि वह श्रेयमार्ग का निरादर नहीं करता, किन्तु उसे मुख्य समझ कर प्रवृत्ति मार्ग से जिसमे नचिकेता था ही निवृत्ति मार्ग में जाने का इच्छुक है।

आत्मवेत्तार्षि—"फिर अपना व्याख्यान प्रारम्भ करके बोले। निवृत्ति और प्रवृत्ति मार्ग को ठीक समझाने के लिये अवस्थाओं का ज्ञान होना आवश्यक है, उसका बहुत स्थूल विवरण यहां दिया जाता है:—

"अवस्थायें"

अवस्थायें तीन हैं (१) जागृत (२) स्वप्न (३) सुषुप्त। इनमें से जब मन और इन्द्रिय दोनों अपने २ काम से अपना २ काम करते हैं, तब उसे "जाग्रतावस्था" कहते हैं। परन्तु जब इन्द्रियों का काम बन्द होकर केवल मन का काम जारी रहता है तब उसे "स्वप्नावस्था" कहते हैं, और जब केवल आत्मा अपने ही भीतर काम करता है और मन का काम बन्द हो जाता है, तब उस अवस्था को 'सुषुप्त" कहते हैं। निवृत्ति, प्रवृत्ति मार्गों और उसके साथ ही जागृत, स्वप्नादि अवस्थाओं पर विचार करने से स्वार्थ के भेदों का कुछ रूप समझ में आता है। जब जागृत में सुषुप्तावस्था की सी अवस्था हो जावे अर्थात् मन और इन्द्रिय बिलकुल निष्क्रिय हो जावें तब वह स्वार्थ का उत्कृष्ट रूप होता है, परन्तु जब मन और इन्द्रिय दोनों या केवल मन काम करे परन्तु ममता के वश में न हो, तो वह स्वार्थ का मध्यम रूप होता है। स्वार्थ का निकृष्ट रूप समझने के लिये ममता का ज्ञान होना चाहिये—

'ममता क्या है'

वेद और उपनिषद् की शिक्षा यह है कि मनुष्य संसार की प्रत्येक वस्तु को ईश्वर प्रदत्त समझ कर प्रयोग में लावे, इसका फल यह होता है कि संसार की प्रत्येक वस्तु के लिये मनुष्य की भावना यह होती है कि वह (तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा! यजुर्वेद अध्याय ४० मन्त्र १) उसकी नहीं है, किन्तु ईश्वर की है और प्रयोग और केवल प्रयोग के लिये उसे मिली हुई है; और इस अवस्था में

स्वामी का अधिकार है कि अपनी वस्तु जब चाहे ले ले। प्रयोक्ता को उसके देने में "किन्तु परन्तु" करने की गुंजाइश नहीं रहती। उदाहरण के लिये कल्पना करो कि रामदत्त का एक पुस्तक है और उसे पढ़ने के लिये सन्तोषकुमार ने ले लिया है। सन्तोष कुमार उस पुस्तक को पढ़ता है। यह पुस्तक उसे बहुत रुचिकर मालूम देती है और उसका जी नहीं चाहता कि समाप्त करने से पहले छोड़े। परन्तु पुस्तक के समाप्त होने से पहले पुस्तक के स्वामी रामदत्त को उसकी ज़रूरत पड़ी और रामदत्त ने पुस्तक सन्तोष कुमार से मांगी। अब बतलाओ कि सन्तोष कुमार का क्या कर्त्तव्य है। उसे वह पुस्तक रामदत्त को दे देनी चाहिये या नहीं?

**जयसिंह**—अवश्य दे देनी चाहिये।

**कृष्णादेवी**—उसे दे ही नहीं देनी चाहिये, किन्तु प्रसन्नता के साथ धन्यवाद पूर्वक पुस्तक को लौटाना चाहिये।

**आत्मवेत्ता**—ठीक है। आप लोगों का उत्तर यथार्थ है परन्तु एक बात बतलाओ कि यदि सन्तोषकुमार यह भुला कर कि पुस्तक का स्वामी रामदत्त है, यह कहने और समझने लगे कि यह पुस्तक मेरा है और पुस्तक रामदत्त को न लौटावे तो इस का फल क्या होगा?

**कृष्णादेवी**—इसका फल यह होगा कि पुस्तक को तो रामदत्त बल पूर्वक छीन कर ले ही लेगा, क्योंकि पुस्तक उसका है और सन्तोषकुमार को पुस्तक के छिन जाने से व्यर्थ में दुःख उठाना पड़ेगा।

**आत्मवेत्ता**—अच्छा कोई विधि है, जिससे सन्तोष-

कुमार इस दुःख उठाने से बच जावे।

जयसिंह—एक मात्र उपाय यह है, कि सन्तोषकुमार प्रसन्नता से पुस्तक को पुस्तक के स्वामी को लौटा देवे!

आत्मवेत्ता—ठीक है। सन्तोषकुमार को इस उदाहरण में दुःख क्यों उठाना पड़ा?

कृष्णादेवी—केवल इसलिये कि उसने पुस्तक के सम्बन्ध में यह भावना पैदा करली थी कि पुस्तक मेरा है——

"मृत्यु के दुःख का कारण ममता"

आत्मवेत्ता—ठीक है इसी भावना का नाम "ममता" है, पुस्तक के सदृश संसार की प्रत्येक वस्तु जिस में धन सम्पत्ति ज़िमींदारी, राज्य पुत्र, पौत्र, बन्धु, बांधव सभी शामिल हैं, ईश्वर के हैं और मनुष्य को केवल प्रयोग के लिये मिले हैं, उन्हें ईश्वर जब भी लेना चाहे प्रयोक्ता को प्रसन्नता से लौटा देने चाहियें। यदि प्रयोक्ता को उसमें ममता का सम्बन्ध जोड़ कर कि यह धन मेरा है, संपत्ति मेरी है, राज्य मेरा है, पुत्र मेरा है पौत्र मेरा है इत्यादि उन्हें न देना चाहेगा, तो भी पुस्तक के स्वामी के सदृश इन वस्तुओं का स्वामी ईश्वर उन्हें बल प्रयोग करके ले लेगा और उस समय सन्तोषकुमार की भांति प्रयोक्ता को क्लेश भोगना पड़ेगा—क्या यह ठीक है?

"रामदत्त आदि सभी उपस्थित गण" एक स्वर से बोले कि हां ठीक है——

आत्मवेत्ता—तो क्या यही क्लेश आप लोग नहीं भोग रहे हैं!

**उपस्थित गण**—(नीची गर्दन करके प्रथम चुप हो गये फिर आत्मवेत्ता के दुबारा पूछने पर बहुत धीमे स्वर से बोले) ठीक है—यही क्लेश हमभी भोग रहे हैं।

**आत्मवेत्ता**—फिर जब आप समझ गये कि आप अनुचित रीति से ममता के वश होकर क्लेश भोग रहे हैं, तो प्रसन्नता के साथ इस क्लेश को दूर कर देना चाहिये, मनुष्य ममता ही के वश में होकर तो इस प्रकार के कार्य करता है, जिससे उसे दुखी होना पड़ता है। इसी ममता के वश में होने का नाम "निकृष्ट स्वार्थ" है। यही "निकृष्ट स्वार्थ" है, जिससे मनुष्य को धन संपत्ति के चले जाने या बन्धु बान्धवों की मृत्यु से दुखः उठाना पड़ता है। इसके सिवा एक बात और भी है यदि कुछेक लोगों के कथनानुसार इस प्रकार दुखित और क्लेशित होने को गई वस्तु की पुनःप्राप्ति का यत्न माना जावे तो भी यह यत्न वृथा है। यह बात पिता पुत्रादि के सम्बन्ध की वास्तविकता का ज्ञान होने से स्पष्ट होगी

पांचवां परिच्छेद

## [ सम्बन्ध का वास्तविक रूप ]

पिता, पुत्र, बन्धु-बान्धवों के सम्बन्ध का वास्तविक रूप क्या है—यह बात जानने के लिये सम्बन्ध की सत्ता पर विचार करना चाहिये। क्या पिता पुत्र का सम्बन्ध दोनों की आत्माओं में है? उत्तर यह है, कि नहीं, क्योंकि पिता पुत्र के सम्बन्ध के लिये आयु का भेद अनिवार्य है। परन्तु आत्मायें सब एक सदृश नित्य हैं। उनका न आदि है और न अन्त। इसलिये यह सम्बन्ध आत्माओं में, आयु का भेद न होने से. नहीं हो सकता। फिर क्या सम्बन्ध शरीर और शरीरों में है? नहीं, यह भी नहीं हो सकता, क्योंकि

मरने के बाद भी शरीर बाकी रहता है, परन्तु कोई उसे पिता या पुत्र समझकर घरमें नहीं रखता। किन्तु शरीर से आत्मा के निकलने ही जब कि उसकी संज्ञा शरीर से "शव" हो जाती है यथा सम्भव शीघ्र दाह करने की प्रत्येक चेष्टा किया करता है। यदि शरीर ही पिता या पुत्र हो, तो उसके दाह करने से पिता या पुत्र के घात का पाप दाह करने वालों को होना चाहिये। परन्तु ऐसा नहीं होता, किन्तु शव का दाह कर्तव्य (१) और पुण्य (२) बतलाया गया है। अतः यह स्पष्ट है कि पित्रादि का सम्बन्ध न तो केवल आत्मा आत्मा में है और न केवल शरीर शरीर में। फिर यह सम्बन्ध किसमें है? इसका उत्तर यह है कि यह सम्बन्ध शरीर और आत्मा के संयोग होने पर स्थापित होता और वियोग होने पर टूट जाता है। आत्मा और शरीर के संयोग का नाम ही पिता पुत्रादि हुआ करता है। एक गृहस्थ के घर में पुत्र का जन्म होता है। इस जन्म होने का अर्थ क्या है? शरीर और आत्मा का संयोग, इसी संयुक्त द्रव्य का नाम ही पुत्र होता है इस प्रकार जब शरीर और आत्मा के संयोग का नाम पिता पुत्रादि हुआ करता है, तो इस सम्बन्धके टूट जाने पर इस सम्बन्ध की समाप्ति हो जाती है यह परिणाम निकालना अनिवार्य है। इस प्रकार जब मृत्यु (शरीर और आत्मा का वियोग) होने पर सम्बन्ध टूट जाता है और पिता पुत्रादि की कोई सत्ता बाकी नहीं रहती, तो फिर

---

(१) भस्मान्तं ँ शरीरम्। (यजु० ४०। १७) अर्थात् शरीर के लिये अन्तिम कृत्य भस्म करना है इसी लिये इस संस्कार का नाम अन्त्येष्टि अर्थात् अन्तिम यज्ञ रक्खा गया है इसी को नरमेध भी कहते हैं।

(२) एतद्वै परमं तपो यत् प्रेतमरण्यं हरन्ति। एतद्वै परमन्तपो यत् प्रेतमग्नावभ्यादधीत। (बृहदारण्यकोपनिषद् अ० ५ ब्रा ११ क १) अथवा शव का श्मशान में ले जाना और उसका दाह करना साधारण तप नहीं किन्तु परम तप है—

दुःखित और क्लेशित होना रूप यत्न किसकी पुनः प्राप्ति के लिये किया जा सकता है ?

एक फ़ारसी के कवि "उर्फ़ी" ने बहुत अच्छी तरह से इसी सिद्धान्त के प्रदर्शित करने का यत्न किया है। उसने लिखा है, यदि रोने से प्रियतम मिल जाता, तो सौ वर्ष तक इसी आशा में रोया जा सकता है (१) निष्कर्ष यह है कि मरने पर मरने वाले के लिये रोना पीटना, दुःखित और क्लेशित होना व्यर्थ और सर्वथा अनावश्यक है, बल्कि इसके विपरीत अवशिष्ट परिवार को यह सोचते हुये क एक वस्तु ईश्वर की थी उसने उसे जब चाहा ले लिया और उसके इस प्रकार उस वस्तु को लेलेने से हम पर जो उससे सम्बन्धित, उत्तर दायित्व रूप बोझ था कम हो गया और परिणाम में हमें आंशिक स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। इस स्वतन्त्रता की प्राप्तिके लिए हर्ष करना चाहिये न कि मातम।

[१] फ़ार्सी का शेर इस प्रकार है—
उर्फ़ी अगर बगिर्य मयस्सर शुदे विशाल।
सद्साल मे तवां व तमन्ना ग्रीसतन ॥

**आत्मवेत्ता**—ऋषि ने यहां पर अपना उपदेश समाप्त किया। उपदेश की समाप्ति पर श्रोताओं के मुखड़ों से एक प्रकार की गम्भीरता प्रकट हो रही थी, जितने वे दुखी थे उसका बहुत अंश दूर हो चुका था और बाकी रहे दुःखकी भी निःसारता समझते हुये उसके दूर करने के लिये वे यत्नवान् प्रतीत होते थे और जो कुछ उन्होंने उपदेश सुना था; उस पर विचार करते हुये और भी कुछ उपदेश शंकाओं के समाधान रूप में, सुनना चाहते थे। इसी उद्देश्य से श्रोताओं में से एक बोल उठाः—

**प्रेमतीर्थ**—(इस उपदेश के लिये कृतज्ञता प्रकाशित करते हुये एक प्रश्न करता है) आपने जो वेद की शिक्षा यह बतलाई है

कि मृत्यु का दुख केवल ममता का परिणाम है, तो क्या इसका तात्पर्य यह है कि मृत्यु दुःखप्रद ही नहीं है और मरने से मरने वाले को कुछ क्लेश हो नहीं होता।

**आत्मवेत्ता**—हां यहठीक है कि स्वयमेव मृत्यु क्लेशप्रद नहीं है। और आगामी संघ में इस शिक्षा के सम्बन्ध में कुछ कहा जायगा।

छठा परिच्छेद

"तीसरा संघ"

## ( मृत्यु का वास्तविक रूप )

सुन्दर और सुहावनी तपो भूमि में जहां सुख और शान्ति का वायु प्रवाहित हो रहा है आत्मवेत्ता ऋषि व्यास सान पर विराजमान हैं। अनेक नर नारी एकत्रित हैं और प्रत्येक के हृदय में एक विलक्षण प्रकार की उत्सुकता है कि आज वे प्रश्नों के प्रश्न, जगत् के महत्तम प्रश्न, मृत्यु के प्रश्न सम्बन्ध में एक ऐसे महापुरुष से कुछ सुनने का सौभाग्य प्राप्त करने वाले हैं, जो प्रश्न के सम्बन्ध में कुछ कहने के अधिकारी हैं और इस लिये प्रत्येक नरनारी टिकटिकी बांधे हुये ऋषि की ओर देख रहे हैं। कब मुखारविन्द से उपदेश आरम्भ होता है:—

**आत्मवेत्ता**—ऋषि ने अपने मौनव्रत को तोड़ा और संघ में नर नारियों की उपदेशामृत सुनने की उत्सुकता का अनुभव करके इस प्रकार कहना शुरू किया:—

**आत्मवेत्ता**—मृत्यु क्या है, इसके सम्बन्ध में अनेक

प्रकार की बातें अनेक सम्प्रदायों में प्रचलित हैं परन्तु जीवन और मृत्यु का वास्तविक रूप यह है कि अनेक नाड़ी और नसों से बने हुये शरीर और अमर आत्मा के संयोग का नाम "जीवन" है और उन्हीं के वियोग का नाम मृत्यु है। अपने अपने स्वरूप से जीवन और मृत्यु कोई ऐसी वस्तु नहीं हैं; जिनमें उत्तर दायित्वपूर्ण कर्तृत्व का आरोप किया जा सके। वे एक प्रकार की क्रियायें हैं और इसलिये उनके परिणाम पर ध्यान देकर उन्हें दुःख या सुख प्रद कहा जाता है। उसी मृत्यु के सम्बन्ध में अब कुछ कहा जाता है:—

### मृत्यु सुखप्रद है

सबसे पहली बात जो मृत्यु के सम्बन्ध में समझ लेने की है, वह यह है कि परिणाम की दृष्टि से मृत्यु दुःखप्रद नहीं किन्तु सुखप्रद है। मृत्यु किस प्रकार सुखप्रद है ? यह सिद्धान्त कुछ व्याख्या चाहता है और वह व्याख्या इस प्रकार है:—जीवन और मृत्यु को दिन और रात के सदृशय कहा जाता है। यह सभी जानते हैं कि दिन काम और रात्रि आराम करने के लिये है। मनुष्य दिन में काम करता है। काम करने से उसके अन्तः करण ( मन बुद्धि आदि ) और बाह्यकरण आँख, नाक, हाथ, पांव आदि सभी थक कर काम करने के अयोग्य हो जाते हैं और तब वह कुछ नहीं कर सकता। इसी प्रकार शक्ति का ह्रास होने पर रात्रि आती है। दिन में जहां मनुष्य के शरीर के भीतर और बाहर की सभी इन्द्रियां अपना काम तत्परता से करती थीं। अब रात्री आने पर मनुष्य गाढ़ निद्रा में सो जाता है और अन्तःकरण क्या, और बाह्यकरण क्या सभी शान्त और पुरुषार्थ रहित हो जाते हैं। काम करने से जहां शक्ति खर्च होकर कम होती है, काम न करने से खर्च बन्द हो जाने के कारण शक्ति पुनः एकत्र होने लगती है। इस प्रकार खर्च हुई शक्ति को

पुनः मनुष्य पुरुषार्थमय होकर उस एकत्रित शक्ति को व्यय कर डालता है। फिर रात्रि आती है और पुनः शक्ति का भण्डार भर देती है। यह क्रम अनादि काल से चला आता है और अनन्त काल तक चलता रहता है—

**गायत्री**—( संघ में उपस्थित एक देवी ) रात्रि में काम न करने से शक्ति किस प्रकार एकत्र हो जाती है?

**आत्मवेत्ता**—शक्ति रक्त में रहती है और नया रक्त प्रति समय आहार के रूपान्तरित होने से बनता रहता है और रात्रि में शक्ति का व्यय बन्द होने से उस शक्ति की मात्रा बढ़ती रहती है। यह नियम प्राणि और अप्राणि सभी में काम करता है। जब किसी भूमि की पैदावार कम हो जाती है, तो कृषक उसे कुछ काल के लिये छोड़ देता है और उसमें कुछ नहीं बोता। इस प्रकार कुछ अरसे तक भूमि के खाली पड़ रहने से उसमें फिर उत्पादिका शक्ति एकत्र हो जाती है और भूमि फिर अन्न पैदा करने योग्य हो जाती है। तब कृषक फिर उसमें बोना शुरू कर देता है।

( यह उत्तर देने के बाद आत्मवेत्ता-ऋषि फिर अपना व्याख्यान जारी करते हैं )।

**आत्मवेत्ता**—जिस प्रकार दिन और रात काम और आराम करने के लिये हैं, इसी प्रकार जीवन और मृत्युरूपी दिन रात भी काम और आराम करने के लिये ही हैं। मनुष्य जीवनरूपी दिन में काम करता है। यह काम बाल्यावस्था से आरम्भ होकर यौवनावस्था में उच्च शिखर पर पहुंच जाता है वृद्धावस्था जीवनरूपी दिन का अन्तिम पहर होता है। इस लिये जिस प्रकार सायंकाल होने से पहिले मनुष्य काम करते

करते थक जाता है, अधिक काम करने योग्य नहीं रहता, इसी प्रकार वृद्धावस्था ( जीवन रूपी दिन के शायंकाल ) के आने पर भी मनुष्य काम करने के अयोग्य हो जाता है। मस्तिष्क काम नहीं देता, स्मृति खराब हो जाती है। हाथ पांव हिलाना दूभर हो जाता है। अधिक कहने की ज़रूरत नहीं. सभी जानते हैं कि बुढ़ापे की अन्तिम अवस्था में मनुष्य काम करने के अयोग्य और निकम्मा हो जाता है, चारपाई पर पड़े पड़े खों खों करने के सिवाय और किसी काम का नहीं रहता। वह सारा सामर्थ्य जो बाल्य और युवा वस्था में था, बुढ़ापे में स्वप्न की सी बात हो जाती है। इस प्रकार जब जीवनरूपी दिन में मनुष्य काम करते करते थक जाता है और अधिक काम करने के अयोग्य हो जाता है. तब मृत्यु रूपी रात्रि आराम देकर निकम्मापन दूर करने के लिये आती है। जिस प्रकार रात्रि में आराम पाकर प्रातःकाल होने पर मनुष्य नये उत्साह नये सामर्थ्य. नई स्फूर्ति के साथ उठता है. इसी प्रकार मृत्युरूपी रात्रि में आराम पाकर मनुष्य जीवन रूपी दिन प्रातःकाल रूपी बाल्यावस्था में नये उत्साह, नई शक्ति, नये सामर्थ्य और नई स्फूर्ति के साथ उत्पन्न होता है। जहां बुढ़ापे में हाथ पाँव हिलाना मुशकिल था, वहां बाल्यावस्था इसके सर्वथा विपरीत है। यहां बालकाल में सामर्थ्य की इतनी बहुलता है कि बालक को हाथ पांव ठहराना कठिन होता है। यदि उसके हिलते हुये हाथों को पकड़लो तो वह पांव हिलाने लगेगा। यदि पांव भी पकड़लो तो रोने लगेगा। गर्ज़ कि जब तक वह अपने हाथ पांव हिलाने में बाधक साधनों को दूर न कर लेगा, चैन न लेगा। इतना परिवर्तन क्यों हो गया इसका एक मात्र उत्तर यह है, कि मृत्यु रूपी रात्रि ने आराम देकर बुढ़ापे की अकर्मण्यता को बाल्यावस्था की इस अपूर्व कर्मण्यता में बदल दिया। इस प्रकार हमने देख लिया कि मृत्यु

दुःख देने के लिये नहीं, किन्तु आराम और सुख देने के लिये ही आती है। इसी लिये कृष्ण महाराज ने गीता में अर्जुन के प्रति कहा है—

## "शरीर वस्त्र के सदृशय है"।

वांसांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा न्यान्यानि संयाति नवानि देही॥

(गीता २। २२)

अर्थात् जिस प्रकार मनुष्य फटे पुराने वस्त्र छोड़ कर नये वस्त्रों को ग्रहण कर लिया करता है, इसी प्रकार आत्मा जीर्ण और नकम्मे शरीर को छोड़ कर नया शरीर ग्रहण कर लिया करता है। भला कभी किसी को देखा या सुना है कि पुराने वस्त्रों को छोड़ कर नये वस्त्रों के ग्रहण करने में उसे दुःख या क्लेश हुआ हो, बल्कि इसके विपरीत यह देखा जाता है कि नये वस्त्रों के ग्रहण करने से सभी प्रसन्न होते हैं फिर भला आत्मा निकम्मे और जरजर शरीर को छोड़ कर नये और पुष्ट शरीर के ग्रहण करने से अप्रसन्न और दुःखी किस प्रकार हो सकता है। इस लिये यह सिद्धान्त कि मृत्यु दुःखप्रद नहीं, अपितु सुखप्रद है, श्रेयस्कर और ग्राह्य है।

### मृत्यु दुखप्रद क्यों प्रतीत होता है?

**वीरभद्र**—(संघ का एक सदस्य आत्मवेत्ता का उपदेश सुन कर बोला) आपका उपदेश तो अवश्य श्रेयस्कर और ग्राह्य है, परन्तु जिस समय सिद्धान्त की सीमा उलंघन करके क्रियात्मक जगह पर दृष्टि डालते हैं, तो यह बात इसके सर्वथा विपरीत मालूम होती है। एक कुष्टरोग से पीड़ित प्राणी जेलखाने में कैद है। रोग की पीड़ा भयानक रूप धारण किये हुये है। रोगी के शरीर से रक्त और रस बह बह कर प्रवाहित हो रहा

है। बन्दी होने के कष्ट भी साथ ही साथ भोगने पड़ते हैं, किसी प्रकार का उसको सुख नहीं है किन्तु जीवन क्लेशमय और दुःखमय बन रहा है। स्पष्ट है कि यदि वह मरजावे तो इन सारे दुःखों से छूट जावे, इसी लिये यदि इसे पूछते हैं कि इन समस्त दुःखों से बचने के लिए क्या तुम मरना चाहते हो तो मरने का नाम सुन कर वह भी कानों पर हाथ रखता है। यह अवस्था तो एक साधारण व्यक्ति की हुई कि मृत्यु का नाम सुन कर काँपने लगता है। अब एक विद्वान् वैज्ञानिक का हाल सुनिये।

### लाप्लास की एक जीवन घटना

फ्रांस देश का एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक "लाप्लास" था, जिस ने जगदुत्पत्तिके सम्बन्ध में प्रचलित पाश्चात्य सिद्धान्त "नैबुलर थियोरी" [ Nebular theory ] का विवरण देते हुये एक पुस्तक में लिखा था, जिसमें सूर्य चन्द्रादि अनेक नक्षत्रों की उत्पत्ति का विवरण अंकित था। पुस्तक के तय्यार हो जाने पर उसकी एक कापी उसने महान् नैपोलियन को भेंट की। नैपोलियन ने पुस्तक को पढ़ा और लाप्लास से फिर भेंट होने पर एक प्रश्न किया। प्रश्न यह था कि तुमने पुस्तक में जगत् के रचयिता ईश्वर का क्यों कहीं जिक्र नहीं किया। लाप्लास नास्तिक था। उसने नास्तिकता-पूर्ण उत्तर दिया। उत्तर यह था कि मुझे इस जगदुत्पति का विचार करते हुये ईश्वर की कल्पना करने की कहीं आवश्यकता ही नहीं प्रतीत हुई। नैपोलियन उसका उत्तर सुनकर चुप होगया। परन्तु जब लाप्लास के मृत्यु का समय उपस्थित हुआ और उसको निश्चय हो गया कि अब कुछ क्षण ही में मृत्यु आकर उसकी रूह पर कब्ज़ा करना चाहता है तो वह इतना भयभीत हो गया कि भय की अधिकता के कारण उसे कुछ भी सुध बुध नहीं रही। और

अनायास उसके मुख से ये शब्द निकल पड़े "Love is greater than thousands of my mathematics" अर्थात् ईश्वर का प्रेम मेरे हजारों गणितों से श्रेष्ठ है' यह ईश्वर का प्रेम उस समय उसे याद आया, जब उसने समझ लिया कि अब मृत्यु गला घोटना चाहती है। कहने का तत्पर्य यह है कि यदि साधारण स्थिति के आदमी एक ओर मृत्यु से भयभीत होते हैं, तो दूसरी ओर लाप्लास जैसे विद्वानों को भी मृत्यु कम डरावनी नहीं है। क्रियात्मक रूप में जब मृत्यु इतना भयप्रद है तो फिर किस प्रकार उसे सुखप्रद कहा जा सकता है ?

**आत्मवेत्ता**—यह सच है कि क्रियात्मक संसार में मृत्यु दुःखप्रद सा प्रतीत होता है, पर विचारने के योग्य तो यही बात है कि मृत्यु के समय में होने वाले दुःख का कारण स्वयमेव मृत्यु है या कोई कारण है। जिसे मरने वाले ने स्वयमेव उपस्थित कर लिया है।

**वीरभद्र**—और क्या कारण हो सकता है ?

ममता से दुःख होता है मृत्यु से नहीं।

**आत्मवेत्ता**—कारण का संकेत कुछ तो ऊपर किया ही गया है, कुछ उसे और स्पष्ट अब किया जाता है। यह कहा जा चुका है कि जगत् की प्रत्येक वस्तु ईश्वर की है और मनुष्य को प्रयोग के लिये मिली है। मनुष्य को जगत् की समस्त वस्तुओं में केवल प्रयोगाधिकार है। ममता के वशीभूत होकर जब मनुष्य उन्हें अपना समझने लगता है, तभी उसे कष्ट भोगना पड़ता है।

**वीरभद्र**—अपना समझने से कष्ट क्यों होना चाहिये ?

**आत्मवेत्ता**—संसार में मृत्यु का क्रियात्मक रूप यह है कि वह मनुष्यों से प्राप्त वस्तुओं को छुड़ा दिया करता है। कल्पना करो कि जयचन्द्र एक गृहस्थ है, उसके पास अनेक ग्राम उसकी ज़र्मीदारी में हैं, बहुत सा धन भी है पुत्र पौत्र भी हैं। निदान सब प्रकार से धन धान्य और कुटुम्ब परिवार से परिपूर्ण है। पर्य्याप्त आयु भोगने के बाद अब जयचन्द्र मृत्यु-शय्या पर पड़ा है और शीघ्र ही संसार से कूच करने वाला है। अच्छा ! बतलाओ कि जयचन्द्र यहां से जब जायगा तो वह अपने साथ क्या क्या ले जायेगा ?

मनुष्य के साथ केवल धर्म्माधर्म जाते हैं।

**सत्यशील**—जयचन्द्र यहां से अपने किये हुये कर्म्मों के सिवा, जिन्हीं का नाम धर्म्माधर्म है, और कुछ न लेजायगा

**आत्मवेत्ता**—क्या ज़िमीदारी, धन, सम्पत्ति, पुत्र और पौत्रों में से किसी को भी अपने साथ न ले जायगा

**सत्यशील**—नहीं।

**आत्मवेत्ता**—क्यों साथ न ले जायगा ? ... अपनी इच्छा से साथ न ले जायगा या किसी मजबूरी से ... ? यदि किसी मजबूरी से, तो वह मजबूरी क्या है ?

**सत्यशील**—अपनी इच्छा से तो कौन अपनी वस्तुओं को छोड़ा करता है। अ... अवश्य कोई मजबूरी ही होनी चाहिये और वह मजबूरी म... मृत्यु के सिवा और कुछ प्रतीत भी नहीं होती है।

सांसारिक वस्तुओं में केवल प्रयोग अधिकार है।

**आत्मवेत्ता**—ठीक है। वह मजबूरी मृत्यु के ही रूप में है मृत्यु का काम हो यह है कि वह मृत पुरुष से जीवन में प्राप्त वस्तुओं धन सम्पत्ति आदि को छुड़ा दिया करती है। यदि जयचन्द इन वस्तुओं में अपना केवल प्रयोगाधिकारी ही समझता है, तो वह उस स्कूल मास्टर की तरह है कि जो स्कूल का अन्तिम घन्टा बजते ही स्कूल की इस्तेमाली किताबों और ब्लैकबोर्ड आदि को, जो उसे स्कूल के घंटों में स्कूल का काम चलाने के लिये मिले थे, स्कूल ही में छोड़ कर प्रसन्नता के साथ स्कूलसे चल देता है समस्त प्राप्त वस्तुओं सम्पत्ति आदि को स्वयमेव यहीं छोड़ कर यह समझता हुआ कि जीवन रूपी स्कूल के समाप्त होने पर इनके प्रयोग की अवधि भी समाप्त होगई है। वह प्रसन्नता के साथ संसार से चल देगा। इस दशा में उसे कुछ भी दुःख मृत्यु से न होगा।

**श्रीहर्ष**—जयचन्द्र की इस अवस्था में कुछ तो दुःखी होना ही पड़ेगा। क्योंकि उसे अपनी वस्तुयें तो छोड़नी ही पड़ेगी।

**आत्मवेत्ता**—कदापि नहीं। क्या उस स्कूल मास्टर को स्कूल की वस्तुयें, स्कूल में छोड़ कर छुट्टी होने पर घर चलते समय भी कुछ दुःख हुआ था?

**श्रीहर्ष**—स्कूल मास्टर तो प्रसन्नता से छुट्टी होने पर घर आया करते हैं। उन्हें तो कुछ भी दुःख नहीं होता।

**आत्मवेत्ता**—तब जयचन्द्र को क्यों दुःख होना चाहिये। वह भी तो सारी सम्पत्ति को अपनी नहीं किन्तु ईश्वर की समझ कर, प्रयोग-अवधि [ आयु ] समाप्त होने पर जा रहा

है। हां जयचन्द्र को उस हालत में दुःख हो सकता है; यदि वह इन समस्त वस्तुओं में ममता जोड़ कर यह समझने लगे कि ये वस्तुयें मेरी हैं।

हर्षवर्धन—ममता जोड़ने से क्यों दुःख होगा?

आत्मवेत्ता—इस लिये कि वह तो इन वस्तुओं को अपनी समझ कर छोड़ना न चाहेगा, क्यों कि कौन अपनी वस्तुओं को छोड़ा करता है, परन्तु मृत्यु उससे इन वस्तुओं को बल पूर्वक छुड़ावेगा। बस, बलपूर्वक, इच्छा के विरुद्ध वस्तुओं के छुड़ाने ही से तो कष्ट हुआ करता है। इससे साफ ज़ाहिर है कि मृत्यु स्वयमेवदुःखप्रद नहीं, किन्तु मनुष्य जगत् की वस्तुओं में ममता जोड़ कर मृत्यु के समय मृत्यु को दुःख प्रद बना लिया करता है।

## एक उदाहरण

Ludicrons ( Laughin ) glass अर्थात् एक प्रकार के हंसाने वाले आइने में मनुष्य की अच्छी से अच्छी सूरत इतनी भौंडी और खराब दिखलाई देती है कि देखने वाला स्वयमेव अपनी सूरत देख कर हंसने लगता है। क्या इस में सूरत का दोष है? सूरत का तो कुछ दोष नहीं; सूरत तो अच्छी भली है—फिर ख़राब क्यों दिखाई देती है? इसका कारण आइने की ख़राबी है—क्योंकि मामूली शीशे में वह सूरत अच्छी और जैसी है, वैसी ही दिखाई देने लगती है—इसी प्रकार मृत्यु तो अच्छी है, स्वागत करनेके योग्य है, परन्तु जब उसके अच्छे स्वरूप की ममता का शीशा लगा कर देखते हैं, तो शीशे के दोष से ( मृत्यु ) का सुंदर और सुहावना रूप भी भयानक और डरावना दिखाई देने लगता है।

## एक दूसरा उदाहरण

कल्पना करो कि इस संघ में उपस्थित सज्जनों में रामदत्त एक व्यक्ति ने कुछ अनियमता की और संघके प्रबन्ध कर्ताओं ने रामदत्त को चले जानेकी आज्ञा दी। रामदत्त संघ छोड़कर जाता है—बतलाओ उसको कुछ कष्ट होगा या नहीं ?

**शीलभद्र**—अवश्य कष्ट होगा ।

**आत्मवेत्ता**—परन्तु यदि रामदत्त किसी कार्यवश स्वयमेव इस संघ से उठकर चला जावे, तो क्या तब भी उसे दुःख होगा ?

**शीलभद्र**—तब उसे कुछ भी दुःख न होगा । क्योंकि वह तो अपनी प्रसन्नता से स्वयमेव उठ कर गया है।

**आत्मवेत्ता**—तो विचार यह करना है कि दोनों सूरतों में रामदत्त को संघ छोड़ना पड़ता है, परन्तु जब वह स्वयमेव छोड़ता है, तब वह दुःखी नहीं होता। और जब दूसरा कोई उसे मजबूर करके संघ छुड़ाता है, तब उसे दुःखी होना पड़ता है। इन दोनों अवस्थाओं में जो दो प्रकार की एक दूसरे से विभिन्न हालतें होती हैं। इसका कारण यह है कि जब मनुष्य अपनी इच्छा से कोई काम करता है, तब उसे दुःख नहीं होता परन्तु वही काम जब अनिच्छा से करता है, तब उसे दुःखी होना पड़ता है। इसी उदाहरण के अनुसार जब मनुष्य संसार की सांसारिक वस्तुओं में ममता का नाता न जोड़ कर स्वयमेव छोड़ता है, तब उसे मृत्यु के समय दुःखी नहीं होना पड़ता। परन्तु जब ममता के वश होकर प्राणी संसार को स्वयं

नहीं छोड़ता और मृत्यु बलपूर्वक उसकी इच्छा के विरुद्ध उससे संसार छुड़ा देती है तब उसे क्लेशित होना पड़ता है। अतः स्पष्ट है कि मनुष्य की मृत्यु के समय उसके दुःख का कारण संसार के न छोड़ने की इच्छा है, न कि स्वमेव मृत्यु। उस संसार के न छोड़ने की इच्छा मनुष्य को क्यों उत्पन्न होती है? इसका कारण वही ममता है, जिसके फेर में पड़ कर मनुष्य यह समझने लगता है कि संसारमें मेरी ज़िमींदारी है, मेरा धन है, मेरी सम्पत्ति है, मेरे पुत्र पौत्र हैं, मकान है अर्थात् जो है, सब यहीं तो है। इसलिए संसार नहीं छोड़ना चाहिए।

आत्मवेत्ता ऋषिने इस प्रकार अपना उपदेश समाप्त किया संघ के सदस्य उपदेशामृत पान करके अपने को कृत्य - कृत्य समझते थे। परन्तु विषय के गहन होने से शंकाओं को उठाना समाप्त नहीं हुआ था, इसीलिए उनमें से एक पुरुष इस प्रकार बोल उठा—

**शीलभद्र**—यह बात तो स्पष्ट हो गई कि मृत्यु स्वयमेव दुःखप्रद नहीं। इस ज्ञान-वृद्धि के लिए हम सभी उपस्थित नर-नारी कृतज्ञता प्रकाशित करते हैं। इस उपदेश से यह भी प्रकट हो गया कि यदि मरने वाला अपने को ममता के चक्र से मुक्त रख सके, तो बिना किसी प्रकार का दुःख उठाये प्रसन्नता से इस जगत से कूच कर सकता है और यह भी पहले उपदेश मिल ही चुका है कि पिता पुत्रादि के सम्बन्ध शरीर और आत्मा के संयोग ही के नाम हैं। इनके वियोग होने पर फिर सम्बन्ध की कोई सत्ता अवशिष्ट नहीं रहती और इस प्रकार जब सम्बन्ध ही नहीं रहा, तो फिर परलोक गत सम्बधी के लिए रोना पीटना अथवा और कोई इसी

इसी प्रकार की क्रिया करना सर्वथा निरर्थक है। परन्तु मरने वाला मर कर कहां जाता है ? परलोक किसका नाम है ? इस बात के जानने के लिए हम सब बड़े उत्कण्ठित हैं कृपा करके आगामी संघ में इस विषय का उपदेश करें—

आत्मवेत्ता—बहुत अच्छा ( इसके बाद आज का संघ समाप्त हो गया )।

# दूसरा अध्याय

पहिला परिच्छेद

चौथा संघ

## मरने के बाद क्या होता है ?

सुन्दर और सुहावने वृक्षों की शीतल छाया में संघ संघटित है। अनेक नर-नारी परलोक का हाल जानने के लिए बड़े उत्सुक दिखाई देते हैं। आत्मवेत्ता अपने नियत स्थान व्यासासन पर सुशोभित हैं, संघ के कार्य्य का आरम्भ होने में अभी ५ मिनट की देर है। इसलिए संघ को संघटित देख कर भी आत्मवेत्ता अपना उपदेश आरंभ नहीं करते हैं।

**श्वेतकेतु**—महाराज संघ में आने वाले नर-नारी आ तो गए ही हैं, ५ मिनट की क्या बात है, ५ मिनट पहिले ही उपदेश आरम्भ कर देवें।

**आत्मवेत्ता**—नहीं ! यह नहीं हो सकता। जो सज्जन

समय के पाबन्द हैं, ठीक समय पर आवेंगे। समय से पूर्व कार्य्य शुरू करने का फल यह होगा कि वे उन शिक्षाओं से लाभ न उठा सकेंगे, जो समय से पूर्व दी जा चुकेंगी। फल यह होगा कि उन्हें समय की पाबन्दी करने का, इनाम के जगह दण्ड भोगना पड़ेगा। जो मनुष्य समयकी पाबन्दी करते हैं, उनके लिए ५ मिनट बड़ा मूल्य रखते हैं, **'नैपोलियन'** ने आस्ट्रिया के विजय कर लेने पर कहा था, कि उसने आस्ट्रिया को इसलिए विजय कर लिया कि आस्ट्रिया वाले ५ मिनट का मूल्य नहीं जानते थे। इसलिए संघ का कार्य्य न तो समय से पूर्व शुरू होगा न समय के बाद। किन्तु ठीक समय पर ही सदैव शुरू होता रहा है और आयन्दा भी ऐसा ही होगा। ऋषि की अनुमति से संघ में उपस्थित एक प्रेमी ने मग्न होकर एक भजन गायन किया—

अशरण शरण, शरण हम तेरी।
भूले हैं, मार्ग विपिन सघन है—छाई गहन अन्धेरी ॥ १ ॥
स्वार्थ समीर चली ऐसी—सब सुमन सुमन बिखराए।
हा सद्भाव-सुगन्धि चुराई प्रेम प्रदीप बुझाए ॥ २ ॥
कलह कण्टकों से छिदवाया सुख रस सभी सुखाया।
भ्रातृभाव के नाते तोड़े—अपना किया पराया ॥ ३ ॥
लख दुर्दशा हमारी नभ ने ओस बूँद छलकाई।
वह भी हम पर गिरकर फूटी इधर उधर कतराई ॥ ४ ॥
करुणासिंधु सहारा तेरा,—तू ही है रखवाला।
दीन अनाथ हुए हम हा! हा! तू दुःख हरने वाला ॥ ५ ॥
ऐसी कृपा प्रकाश दिखावो—अपनी दशा सुधारें।
आत्मत्याग का मार्ग पकड़लें विश्वप्रेम उर धारें ॥ ६ ॥

भजन समाप्त हुआ ही था और समय पूरा होने में जब केवल एक मिनट बाकी था—तब क्या देखते हैं कि—१०—१२ अच्छे शिक्षित विद्वान् जिनमें कई विदेशी विद्वान् भी थे संघ में सम्मिलित हुए और आत्मवेत्ता ऋषि का यथोचित सम्मान करने के बाद उचित स्थानों पर बैठ गए। संघ के कार्य्यारम्भ होने का समय भी हो चुका था, इसलिए ऋषि ने अपना उपदेश प्रारम्भ कियाः—

**आत्मवेत्ता**—यह बात कही जा चुकी है कि मनुष्य और प्रत्येक प्राणी शरीर और आत्मा के संयोग से उत्पन्न होता है। वेद में कहा गया है कि शरीर में आने जाने वाला जीव अमर है, परन्तु यह शरीर केवल भस्म होने तक रहता है उसके बाद नष्ट हो जाता है। * इसका भाव यह है कि आत्मा तो सदैव एक ही बना रहता है, परन्तु शरीर बराबर प्रत्येक जन्म में बदलता रहता है, इसी लिए आत्मा को अमर और शरीर को मरणधर्मा कहा गया है।

**श्री हर्ष**—क्या आत्मा कभी पैदा ही नहीं होता? जगत् के प्रारम्भ में तो ईश्वर उसकी भी रचना करता ही होगा!

**आत्मवेत्ता**—नहीं, आत्मा की रचना कभी नहीं होती, इसी लिए सत्शास्त्रों में उसके लिए कहा गया है कि "आत्मा न तो उत्पन्न होता और न मरता है, न उसका कोई उपादान कारण (Material Cause) है और न वह किसी का उपादान है, अर्थात् न वह किसीसे उत्पन्न होता है, और न उससे कोई उत्पन्न होता है, वह (आत्मा) अजन्मा, नित्य, प्राचीन और सनातन है, शरीर के नाश होने से उसका नाश नहीं

* वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तं शरीरम्॥ यजु० अ० ४०॥

होता है। † ( यह उत्तर देने के बाद आत्मवेत्ता ने पुनः अपना उपदेश शुरू किया )—

आत्मवेत्ता—आत्मा के इस प्रकार शरीरों के बदलते रहने की प्रथा का नाम पुनर्जन्म या आवागमन है जब प्राणी एक शरीर ( तात्पर्य मनुष्य शरीर से है ) छोड़ता है तो इस प्रकार शरीर छोड़ने या मरने के बाद उसकी तीन गति होती हैं।

---
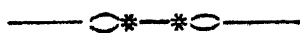
❀ दूसरा परिच्छेद ❀

# "मरने के बाद की पहिली गति"

---

"आवागमन आवश्यक है"

**आत्मवेत्ता**—मनुष्य की पहिली गति वह है, जिसमें उसके पुण्य और पाप दोनों प्रकार के कर्म सञ्चित होते हैं। "नचिकेता" ने एक बार "यम" से यही प्रश्न किया था कि मरने के बाद प्राणी की क्या गति होती है? "यम" ने उसका उत्तर दिया था कि "मरने के बाद एक प्रकार के प्राणी तो जंगम (मनुष्य, पशु, पक्षी, आदि चलने फिरने वाले प्राणियों की ) योनियों को प्राप्त होते हैं। परन्तु दूसरे प्रकार के प्राणी स्थावर ( न चलने वाले वृक्षादि की ) योनियों में जाते हैं"। ये दो अवस्थायें प्राणियों की क्यों होती हैं? यमाचार्य्य ने

---

† न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्नबभूव कश्चित्।
अजोनित्य शाश्वतोऽयम्पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥ ( कठोपनिषद् २। १८ ) इसी उपनिषद् वाक्य को गीता में भी उद्धृत किया गया है, बहुत थोड़े पाठ भेद के साथ ( देखो गीता २। २० )

इसका उत्तर यह ही दिया था कि उन प्राणियों के ज्ञान और कर्म के अनुसार ही ये विभिन्नता होती है। * जब मनुष्य के पुण्य पाप बराबर या पुण्य कर्म अधिक होते हैं, तब उसे मनुष्य-योनि प्राप्त होती है। परन्तु जब अवस्था इसके विरुद्ध होती है, अर्थात् पुण्य कर्म कम या कुछ नहीं या पाप अधिक, या सब पाप ही पाप होते हैं, तो उसे मनुष्य से नीचे दरजे की चल और अचल योनियों में जाना पड़ता है।

**'बसन्ती देवी**—क्या जीव, मनुष्य योनि तक पहुंचकर फिर अपने से निम्न श्रेणीकी योनियोंमें भी जा सकता है?

"मनुष्यों को नीचे की योनियों मे भी जाना पड़ता है"

**आत्मवेत्ता**—हां! जा सकता है। यदि उसके कर्म अधिकता के साथ बुरे हैं, तो अवश्य उसे नीचे जाना पड़ेगा।

**बसन्ती देवी**—परन्तु यह तो विकास के नियमों के विरुद्ध है कि मनुष्य उन्नति करके फिर पीछे लौटे।

"विकास के साथ ह्रास अनिवार्य है"

**आत्म वेत्ता**—दुनियां में एक पहिए की गाड़ी कभी नहीं चलती। ह्रास शून्य विकास की कल्पना भी क्लिष्टकल्पना ही नहीं, किन्तु प्रत्यक्षके भी विरुद्ध है। जगत्‌में कोई वस्तु नहीं देखी जाती, जिसमें विकास के साथ ह्रास लगा न हो। मनुष्य उत्पन्न होता है, परन्तु अन्त में उसे मरना भी पड़ता है सूर्य बनता है, उसकी उष्णता पूर्णकला प्राप्त कर लेती है परन्तु

---

* योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः।
स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम्॥ (कठोपनिषद् ५। ७)

पूर्णता के बाद ही ह्रास शुरू हो जाता है। एक समय आता है और आवेगा जब सूर्य उष्णता हीन हो जावेगा चन्द्रमा बढ़ता है, परन्तु पूर्ण कला को प्राप्त करके उसे घटना भी पड़ता है। एक समय चन्द्रमा में जलादि का होना बतलाया जाता था परंतु अब कहते हैं कि जल का ह्रास होकर चन्द्रमा जलशून्य हो गया है इत्यादि। इस प्रकार जब सृष्टि का सर्वत्रिक नियम यह है कि विकास के साथ ह्रास भी होता है, तब मनुष्य इस नियम से किस प्रकार पृथक् हो सकता है? इसके सिवा कर्म छिन्तकी दुनियां में जब हम प्रविष्ट होते हैं, तो वहां पुण्य कर्म के साथ पाप कर्म मौजूद ही है और पुण्य कर्म करके यदि उत्तम फल प्राणी प्राप्त किया करता है तो पाप कर्म करके उसके फल से किस प्रकार बच सकता है? मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र है, यह स्वतन्त्रता उसका जन्म-सिद्ध अधिकार है। परन्तु चोरी और इसी प्रकार के दुष्ट कर्म करके उसे जेलखाने जाना पड़ता है, जहां उसकी स्वतत्रता छिन जाती है। क्या तुम नहीं देखते कि स्वतंत्रता प्राप्त प्राणी दुष्ट कर्मों से बन्धन में आकर स्वतंत्रता खो बैठता है?

**वसन्ती देवी**—यह तो देखा ही जाता है।

**आत्मवेत्ता**—तो फिर यदि ह्रास शून्य विकास ही का नियम दुनियां में काम करता होता, तो स्वतन्त्रा प्राप्त मनुष्य परतन्त्र कैसे हो जाता ? भूल यह है कि तुम कर्म सिद्धांत को भूल कर केवल विकास रूप मृग-तृष्णा से प्यास बुझाने की इच्छा में हो, प्राणी कर्म फल ही से मनुष्य बनता है और कर्म फल ही से प्राप्त मनुष्यता को खो भी देता है।

**वसन्ती देवी**—बन्दी होना रूप परतन्त्रता तो अस्थायिनी होती है, परन्तु निम्न योनियों में जाना तो उससे भिन्न बात है।

**आत्मवेत्ता**—बन्दी होकर बन्दीगृह में जाना, और निम्न योनियों को प्राप्त होना, इनमें नाम मात्र की विभिन्नता है। मनुष्य-योनि ही एक योनि है जिसमें भोग के साथ प्राणी स्वतन्त्रता से कर्म कर सकता है। बाकी जितनी योनियां हैं, वे सभी भोक्तव्य योनियां, जेलखाने सदृस हैं। मनुष्य जितनी अवधि के लिए इन योनियों में जाता है, उसे समाप्त करके फिर जेलखाने से वापिस होने के सदृश मनुष्य योनि में लौट आता है।

**देवप्रिय**—प्राणी इन योनियों में आखिर जाता क्यों है?

"आवागमन मनुष्य सुधार के लिए है"

आत्मवेत्ता—प्राणी स्वयमेव—अपनी इच्छानुसार—इन नीचे की योनियों में नहीं जाता, किंतु बन्दी होकर जेलखाने में भेजे जाने के सदृश ही, इन निम्न योनियों रूपी जेलखानों में भी, सर्वोच्च न्यायाधीश की आज्ञानुसार, दण्ड भोगने के लिए, किंतु सुधार के उद्देश से भेजा जाता है।

**देवप्रिय**—वहां सुधार किस प्रकार होता है?

**आत्मवेत्ता**—मनुष्य का पाप यही है कि वह अपनी इन्द्रियों को पापकर्म करने का अभ्यासी बनाकर स्वयमेव उनके बन्धन में फंस जाता है। तब दयालु न्यायाधीश अपनी दयापूर्ण न्याय-व्यवस्था से उसे ऐसी किसी योनि में भेज देता

है, जहां उसकी वही इन्द्रिय छिन जाती है। कल्पना करो कि एक मनुष्य ने आंखों को पापमय बना लिया है, तो वह किन्हीं ऐसी योनियों में भेज दिया जायगा, जो चक्षु-हीन हैं। करने से करने का और न करने से न करनेका अभ्यास हुआ करता है। इसलिए आँखों के गोलकों के न होने से आंखों का काम बन्द हो गया और काम बन्द हो जाने से आंखों का बुरा और पाप करनेका अभ्यास छूट जावेगा। ज्यों ही यह अभ्यास छूट जाता है, त्यों ही वह फिर मनुष्य योनि में लौटा दिया जाता है, जहाँ अब आंखों के बन्धन से स्वतन्त्र है। इसी प्रकार आवागमन के द्वारा प्राणियों का सुधार हुआ करता है। जब कोई अधम प्राणी सम्पूर्ण इन्द्रियों से पाप करके उन्हें पापमय बना लेता है, तब वह स्थावर योनियों में भेज दिया जाता है। जो इन्द्रिय रहित योनियां हैं, उनमें जाने से समस्त इन्द्रियों का उपर्युक्त भांति सुधार हुआ करता है।

## "दया तथा न्याय"

**तर्कप्रिय**—आपने ईश्वर को दयालु, न्यायाधीश कह कर संकेत किया है। भला, न्याय और दया ये परस्पर विरोधी गुण किस प्रकार एक व्यक्ति में एकत्रित रह सकते हैं?

**आत्मवेत्ता**—न्याय और दया परस्पर विरोधी गुण नहीं हैं। इनके समझने में साधारण पुरुष ही नहीं, किन्तु कभी कभी उच्च कोटि के विद्वान् भी गलती किया करते हैं। बर्बर्ट स्पेन्सर ने भी इसी प्रकार की भूल की है। उसने ईश्वर को अज्ञेय ( Unknowable ) प्रमाणित करने के लिए एक हेतु यह भी दिया है कि न्याय और दया दो विरोधी गुण किस

प्रकार एक ही व्यक्ति में इकट्ठे हो सकते हैं। () इस प्रकार के पक्ष का समर्थन करने वाले एक भूल किया करते हैं और वह भूल यह है कि वे दया का भाव अपराधों का माफ करना समझ लिया करते हैं। अपराधों का माफ करना दया नहीं, किंतु अन्याय है और दया और अन्याय एक भाव के बतलाने वाले शब्द नहीं हैं, किंतु एक दूसरे से सर्वथा विरुद्ध हैं।

**तर्कप्रिय**—तो फिर दया और न्याय में अन्तर क्या है?

**आत्मवेत्ता**—दया और न्याय में अन्तर यह है कि न्याय कर्म की अपेक्षा रखता है। जब कोई पुरुष कर्म न करे, तो कोई न्यायाधीश न्याय नहीं कर सकता। न्याय कर्म के फलाफल देने का नाम है। परन्तु दया दयालु अपनी ओर से किया करता है: दया के लिए कर्म की अपेक्षा नहीं, दोनों में जो अन्तर है, वह स्पष्ट हो गया कि न्याय के लिए कर्म की अपेक्षा है, परन्तु दया के लिए कर्म अपेक्षित नहीं।

**तर्कप्रिय**—यदि ईश्वर के लिए यह कल्पना की जावे कि वह अपराधों को उचित समझने पर माफ भी कर सकता है तो इसमें हानि क्या है? इससे मनुष्योंमें ईश्वर के प्रति प्रेम और श्रद्धा के भाव ही उत्पन्न होंगे।

**आत्मवेता**—अपराधों का दण्ड विधान न होने, और क्षमा कर देने, का फल यह होता है कि मनुष्यों की प्रवृत्ति अपराध करने की ओर बढ़ा करती है। अपराध करने से जो बुरा प्रभाव मनुष्य के अन्तःकरणों पर पड़ा करता है जिन्हें

() देखो First Principal by H. Spancer.

कर्म की रेखा कहते हैं, यह प्रभाव रूप रेखा फल भोगके बिना नष्ट नहीं होती। इसलिए मनुष्य का भविष्य सुधारने के लिये भी अपराधों का दण्ड विधान अनिवार्य है। परन्तु वह दण्ड सबके लिए एकसा नहीं होसकता एक लज्जाशील विद्यार्थीके लिए एक अपराध के बदले में इतना ही दण्ड पर्याप्त हो सकता है—कि उसे केवल आंखों से ताड़ना कर दी जावे। परन्तु दूसरे निर्लज्ज विद्यार्थी को उसी अपराध के बदले में बेतों से दण्ड देना भी कठिनता से काफ़ी समझा जाता है। इसलिए दण्ड की मात्रा उतनी ही पर्याप्त हो सकती है, जितने से अपराधी का सुधार हो सके और वह प्रत्येक व्यक्ति के लिये उसकी अवस्थानुसार पृथक् पृथक् ही हो सकती और हुआ करती है।

**आत्मवेत्ता**—(इन उत्तरों के देने के बाद ऋषि ने फिर अपना व्याख्यान शुरू किया) जिस समय मनुष्य मृत्यु-शय्या पर होता है और अन्तिम श्वांस लेने की तैयारी करता है, तब तब उसकी अवस्था यह होती है:—

## "प्राण छोड़ने के समय प्राणी की क्या हालत होती है?"

जिस प्रकार कोई राजा जब कहीं जाता है, तब उसे विदा करने के लिए उसके पास ग्राम-नायक आदि आते हैं, उसी प्रकार जीवात्मा जब ऊर्ध्वश्वास लेना शुरू करता है, तब उसके चारों ओर सब इन्द्रियां और प्राण उपस्थित होते हैं। जीव उस समय अपने तेजसे अन्शों को जो समस्त शरीर में फैला रहता है समेटता हुआ हृदय की ओर जाता है, जब वह आंख

के तेज को खींच लेता है तब वह बाहर की किन्हीं वस्तुओं को नहीं देखता, और उस समय निकट बैठे बान्धव कहने लगते हैं कि—अब यह नहीं देखता, इसी प्रकार जब वह प्राण वाक. श्रोत्र, स्पर्श मनादि समस्त बाह्य और अन्तःकरणों से अपने तेज को खींच लेता है, तब वे ही बन्धु-बान्धव कहने लगते हैं कि—अब यह नहीं सूंघता, नहीं बोलता, नहीं सुनता नहीं छूता, नहीं जानता इत्यादि। उस समय उसके हृदय का अग्रभाग प्रकाशित होने लगता है और वह उसी प्रकाश के साथ शरीर से निकलता है † नेत्र या शरीर के किसी दूसरे भाग से निकलता है। निकलने के मार्गों का भेद उसकी अन्तिम गतियों के अनुकूल होता है। ‡जब जीव शरीर से निकलता है, तो उसके साथ ही प्राण और सम्पूर्ण सूक्ष्म इन्द्रियां (सूक्ष्म शरीर) भी स्थूल शरीर को छोड़ने हैं। इस प्रकार शरीर से निकलने वाले जीव के साथ उसके ज्ञानकर्म और पूर्वप्रज्ञा (पूर्वजन्मानुभूति बुद्धि) भी होते हैं *इस प्रकार पुण्य और पाप कर्म दोनों के वशीभूत जीव एक शरीर को छोड़कर दूसरे नये शरीर को ग्रहण कर लेता है।

## "एक योनि से दूसरी योनि तक पहुंचने में कितना समय लगता है ?"

† देखो बृहदारण्यकोपनिषद् अध्याय ४ ब्राह्मण ४ कण्डिका १-२

‡ कठोपनिषद् में लिखा है कि जब जीव मुक्ति का अधिकारी हो जाता है, तब शरीर से मूर्धा में निकलने वाली नाड़ी (सुषुन्ना) के द्वारा निकलता है। परन्तु जब मुक्ति से भिन्न गति होती है तब अन्य मार्गों से निकला करता है। (कठो० ६। १६)

**शीलभद्र**—एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर के ग्रहण करने में जीव को कितने दिन लगते हैं और इन दिनों में वह जीव कहां रहता है ?

**आत्मवेत्ता**—"याज्ञवल्क्य"ने "जनक" को इसी प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा था कि-जैसे "तृणजलायुका" ( एक कीट विशेष ) एक तिनकेके अन्तिम भाग पर पहुंच कर दूसरे तिनके पर अपने अगले पांव जमा कर तब पहिले तिनके को छोड़ती है। इसी प्रकार जीवात्मा एक शरीर को उसी समय छोड़ता है, जब दूसरे नये शरीर का आश्रय ग्रहण कर लेता है। ()

**शीलभद्र**—आखिर इसमें कुछ समय तो लगता ही होगा बिना समय के तो कार्य नहीं हो सकता।

**आत्मवेत्ता**—अवश्य कुछ न कुछ समय एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर के ग्रहण करने में लगता है, परन्तु वह समय इतना थोड़ा होता है कि मनुष्य ने जो समय की नाप तोल ( दिन घड़ी, मुहूर्तादि ) नियत की है, उस गणना में नहीं आता।

"जीव दूसरे शरीर में क्यों जाता है ?"

**इंद्रदेव**—यह जीव दूसरे शरीर में जाता क्यों है ? जब एक शरीर से निकलना उसके अधिकार में है, तो दूसरे में जाना भी उसी के अधिकार में होना चाहिए।

---

* देखो बृहदारण्यकोपनिषद् ४—४—२।

() ,, ,, ४—४—२

**आत्मवेत्ता**—एक शरीर का छोड़ना और दूसरे का ग्रहण करना इन दोनों में से एक भी जीव के अधिकार में नहीं है। शरीरस्थ जीव के लिए एक जगह "जनक" के एक प्रश्न का उत्तर देते हुये "याज्ञवल्क्य" ने बतलाया था कि "वह विज्ञानमय, अन्नमय, प्राणमय, चक्षुर्मय, श्रोत्रमय, पृथ्वीमय, आपोमय, वायुमय, आकाशमय, तेजोमय, अतेजोमय, कार्यमय, अकार्यमय, क्रोधमय, अक्रोधमय, धर्ममय, अधर्ममय, एवं सर्वमय है। यह जीव इदम्मय और अदोमय है। इसी लिए उसको सर्वमय कहते हैं। जैसे कर्म और आचरण करता है, जीव वैसा ही हो जाता है। साधु (अच्छे) कर्म वाला साधु और पाप कर्म करनेवाला पापी होता है। पुण्य कर्म से पुण्यवान और पापकर्म से पापी होता है। यह जीव काम (इच्छा) मय है। जैसी उसकी कामना होती है, वैसा ही वह कर्म करता है और जैसा कर्म करता है, वैसा ही फल पाता है§ एक और ऋषिने कहा है कि—"जो मनुष्य मन में उनकी वासना रखता हुआ जिन २ विषयों की इच्छा करता है, वह उन २ कामनाओं के साथ, जहां जहां वे उसे खींच कर ले जाती हैं, वहां वहां उत्पन्न होता है"* इन कथनों से स्पष्ट है कि जीव अपने कर्मानुसार एक शरीर छोड़ने और दूसरे के ग्रहण करने में परतन्त्र होता है—अर्थात् कर्मानुसार उसे जहां उत्पन्न होना चाहिए, वहीं उत्पन्न होता है, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है

**विनयकुमार**—आपने अभी कहा था कि जीव सूक्ष्म शरीर और इन्द्रियों के साथ शरीर से निकलता है। क्या उस-

§ बृहदारण्यकोपनिषद् अध्याय ४ ब्रा० ४ कं० ५।

*मुण्डकोपनिषद् ३।२।२

की मृत्यु नहीं होती ?

"शरीर के भेद और उनका विवरण"

आत्मवेत्ता-सूक्ष्म शरीर की मृत्यु नहीं होती-मृत्यु केवल स्थूल शरीर की हुआ करती है । इन दो के सिवा एक तीसरा कारण शरीर और भी है, उसकी भी मृत्यु नहीं होती । सूक्ष्म और कारण ये दोनों शरीर आत्मा से उस समय पृथक् होते हैं, जब वह पूर्ण स्वतन्त्रता रूप मुक्ति को प्राप्त कर लेता है।

विनयकुमार—ये तीन शरीर क्यों आत्मा को दिये गये हैं क्या एक शरीर से आत्मा का काम नहीं चल सकता था ?

आत्मवेत्ता—एक शरीर से चाहे वह स्थूल हो या सूक्ष्म तीनो शरीरों का काम नहीं चल सकता था, तीनों के काम पृथक् पृथक् इस प्रकार हैं:—

(१) "स्थूल शरीर"—यह १० इन्द्रियों का समुदाय है और शरीर के वे अवयव भी उसमें शामिल हैं जिनका काम अनिच्छित रीति से प्राकृतिक नियमानुसार होता है। जैसे हृदय, फेफड़े आदि। इस शरीर के विकसित और पुष्ट होने से मनुष्य की शारीरिकोन्नति होती है । यह शरीर ५ स्थूल भूतों का कार्य्य होता है।

(२) "सूक्ष्म शरीर"—सूक्ष्म भूतों से निम्न भांति बनता है: —

| सूक्ष्मभूत रूपी कारण | सूक्ष्म शरीर रूपी कार्य्य |
|---|---|
| १ महत्तत्व | १ बुद्धि |

| | |
|---|---|
| २ अहंकार | १ अहंकार (*) |
| ३-७, पञ्च तन्मात्रा | ३-७ शब्द-स्पर्श-रूप रस-गन्ध (ज्ञानेन्द्रियोंके विषय) |
| ८-१७, १० इन्द्रियां | ८-१७=५ प्राण+५ ज्ञानेन्द्रियां |
| १८ मन | १८ मन |

यह सूक्ष्म शरीर शक्ति समुदाय रूपमें रहता है और इसके विकास और पुष्टित होने से मानसिकोन्नति होती है—

(३) कारण शरीर—कारणरूप प्रकृति अर्थात् सत्व,रजस् और तामस् की साम्यवस्था। इस शरीर के पुष्ट होने से मनुष्य योगी और ईश्वर भक्त बना करता है।

इन तीन शरीरों का विभाग एक दूसरे प्रकार से भी किया गया है। इस विभाग का नाम "कोश विभाग" है। ३ शरीर और ५ कोशों का सम्बन्ध इस प्रकार है:—

## "३ स्थूल और ५ कोष"

| | | |
|---|---|---|
| (१) स्थूल शरीर | = | (१) अन्नमय कोष |
| (२) सूक्ष्म शरीर | = | (२) प्राणमय कोष |
| | | (३) मनोमय कोष |
| | | (४) विज्ञानमय कोष |
| (३) कारण शरीर | = | (५) आनंदमय कोष |

(*) अहङ्कार को सूक्ष्म शरीरावयवों की गणना से प्रायः पृथक् करके सूक्ष्म शरीर १० वस्तुओं का समुदाय माना जाता है, इसका कारण यह है कि अहङ्कार का काम शरीर के पृथक् निर्मित हो जाने से पूरा सा हो जाता है।

## क्या सूक्ष्म शरीर धारियों का पृथक् लोक है?

**बसन्ती देवी**—क्या सूक्ष्मशरीर स्थूलशरीर का सूक्ष्म रूप सूक्ष्म पुतले की भांति नहीं होता? कहा तो यह जाता है कि सूक्ष्मशरीर ( sirm Body ) धारियों का एक पृथक् लोक है और वे उस लोक में बिना स्थूल शरीर ही के रहते हैं। अपना काम उसी अपने सूक्ष्मशरीर से चला लेते हैं। अपनी इच्छानुसार मनुष्यों की सहायता भी करते हैं। मनुष्यों की प्रार्थना का स्वीकार या अस्वीकार करना इन्हीं सूक्ष्मशरीर-धारियों के ही अधिकार में है, इत्यादि।

**आत्मवेत्ता**—ये सब क्लिष्ट कल्पना मात्र है। सूक्ष्म-शरीर के अवयव, सूक्ष्मेन्द्रिय कुछ भी काम नहीं दे सकते। यदि उनके कार्य्यका साधन रूप स्थूलेन्द्रिय (इंद्रियोंके गोलक) नहीं। एक पुरुष सूक्ष्म चक्षु और सूक्ष्म श्रोत्रेन्द्रिय रखता है। परंतु यदि बाह्यगोलक न हों या काम देने के अयोग्य हों, तो वह न देख सकता है, और न सुन सकता है, फिर यह बात किस प्रकार स्वीकृत हो सकती है, कि सूक्ष्मशरीर से कोई अपना सब काम चला सकते हैं और यह कि उनका एक पृथक् ही लोक है।

"भूत प्रेत क्या हैं?"

**बसन्ती देवी**—ये भूत प्रेत फिर क्या हैं? ये किस प्रकार का शरीर रखते हैं, आंखों से तो उनका शरीर नहीं दिखाई देता।

**आत्मवेत्ता**—मनुष्य जब मर जाता है, तो उसके शव

(लाश) का नाम "प्रेत" है, जब तक उसको भस्म नहीं कर दिया जाता, तब तक उसका नाम "प्रेत" ही रहता है, भस्म हो जाने के बाद "प्रेत-संज्ञा" समाप्त हो गई और अब उस मरे हुये पुरुषको "भूत" ( बीता हुआ ) कहने लगते हैं, क्योंकि वर्तमान में उसकी कोई सत्ता बाकी नहीं रहती, इसके सिवा भूत-प्रेत-योनि आदि के विचार भ्रममूलक हैं।

( इस प्रकार प्रश्नों का उत्तर देने के बाद ऋषि ने अपना व्याख्यान समाप्त करने के लिये अंतिम शब्द कहने प्रारम्भ किये )

**आत्मवेत्ता**—मरने के बाद जो तीन गति होती हैं, उनमें से पहिली गति आवागमन के चक्र में रहना है, अर्थात् मर कर किसी न किसी योनि को, अपने कर्मानुसार प्राप्त करना है। प्राणी एक शरीर को छोड़कर तत्काल दूसरी योनि में चला जाता है, जैसाकि ऊपर वर्णन किया गया है। आगामी संघ में शेष गतियों का व्याख्यान किया जायगा, आज का संघ यहीं समाप्त होता है।

——()*-*()——

"तीसरा परिच्छेद"

"पांचवां संघ"

# मरने के बाद की दूसरी गति।

"दूसरी गति कौनसी है"

उज्ज्वल तपोभूमि, तपोनिधि आत्मवेत्ता के तप के कारण हर्ष और शान्ति के वातावरण से परिपूर्ण है, सुन्दर संघ जमा हुआ है अनेक नरनारी मृत्युके बाद दूसरी गति क्या होती है इसके जाननेकी इच्छा से एकत्रित हैं और कान लगाये हुए बैठे

हैं, कि ऋषि कब अपना मनोहर व्याख्यान प्रारंभ करते हैं। नर-नारियों की इस उत्सुकता का अनुभव करते हुये ऋषि ने अपना व्याख्यान आरम्भ किया:—

**आत्मवेत्ता**—जो प्राणी ऐसे कर्म करते हैं, जो पुण्य और पाप मिश्रित होते हैं, मरने पर वे उस गति को प्राप्त होते हैं, जिसकी बात कही जा चुकी है, और जिसका नाम 'पहिली गति रक्खा गया है—परन्तु जो प्राणी केवल ऐसे कर्म करते हैं, जिनमें पाप का समावेश नहीं होता, और जिन्हें पुण्य-कर्म ही कहते हैं। वे दो प्रकार के होते हैं:—एक तो वे जो सकाम कर्म करते हैं—और दूसरे वे, जो निष्काम कर्म करते हैं। सकाम कर्म वाले मर कर जिस गति को प्राप्त होते हैं, उसी गति का नाम **"दूसरी गति है।"**

## दूसरी गति

"इस गति के प्राप्त होने का क्रम"

जो प्राणी इष्ट फल की प्राप्ति के लिए बड़े २ यज्ञ* करते हैं, या अपनी कामनाओं की तृप्ति के लिए जो कूआं§, बावली तालाब, धर्मशाला आदि का निर्माण करते हैं, ऐसे पुरुष मरने के बाद निम्न दशाओं को प्राप्त होते() हैं:—

( १ ) धूम्र ( धुआं की सी ) दशा को प्राप्त होते हैं। (२) धूम्र दशा से रात्रिवत दशा होती है। ( ३ ) रात्रि से अपर ( कृष्णा ) पक्षीय दशा लाभ करते हैं। ( ४ ) अपर पक्ष से षाणमासिक दाक्षिणायिणी दशा प्राप्त करते हैं। ( ५ ) षाण-

* इन यज्ञादि को 'इष्ट" कहते हैं।

§ इनका नाम "पूर्त" हैं।

() देखो छान्दोग्योपनिषद् प्रपाठक ५ खण्ड १० प्रवाक ४।

मासिकी दशा से पैतृक दशा प्राप्त होती है। (६) पैतृक से आकाशीय दशा, और उससे अन्तिम। (७) चान्द्रमसी दशा को पहुँचते हैं।

इस प्रकार चान्द्रमसि दशा को प्राप्त होकर इस अवस्था में वे अपने शुभ परन्तु सकाम कर्मों का भोग करते हैं। और कर्मों के क्षीण और भोगों के समाप्त होने पर उन्हें फिर कर्तव्य-योनि में आना पड़ता है।

श्वेतकेतु—ये धूमादि अवस्थायें क्या हैं और इनके प्राप्त होने का तात्पर्य क्या है?

आत्मवेत्ता—इन अवस्थाओं के द्वारा यह बात दर्शाई गई है कि किस प्रकार जीव क्रमशः अधिक २ प्रकाश को प्राप्त करता है। धूये में नाम मात्र का प्रकाश होता है। रात्रि में उस से अधिक, अपर पक्ष अर्थात् कृष्णपक्ष की १५ रात्रि में उससे अधिक, ६ मास में उससे अधिक, पैतृक दशा में उससे भी अधिक, और आकाशीय में उससे अधिक, और इन सब से अधिक चान्द्रमसी दशा प्रकाश की प्राप्ति और अन्धकार की निवृत्ति होती है।

"पैतृक दशा क्या है?"

दक्ष—पैतृक दशा का भाव क्या है?

आत्मवेत्ता—पैतृक दशा वायवीय दशा को कहते हैं और पितर पालक और रक्षक का नाम है, वायु के भी यही काम हैं, इसलिये पितर नाम वायु का भी है, पञ्च भूतों में आकाश के बाद वायु का स्थान भी है, इसके सिवा लौटने

के क्रम में भी आकाश के बाद वायु ही का स्थान है, इससे भी स्पष्ट है कि पितर नाम वायु ही का है—

**दत्त**—और चान्द्रमसी दशा का तात्पर्य्य चन्द्रलोक से है, या क्या ?

**आत्मवेत्ता**—चान्द्रमसी दशा को प्राप्त होने का भाव यह है कि ऐसे लोक (योनि) को प्राप्त होना, जिसमें केवल हर्ष ही हर्ष हो—दुःख का लेश भी न हो।

"दूसरी गति को प्राप्त जीव कहां रहते हैं"

**देवप्रिय**—चान्द्रमसी दशा को प्राप्त होकर जीव किसी लोक (स्थान) विशेष में रहते हैं, या कहां ?

**आत्मवेत्ता**—ब्रह्माण्ड में असंख्य सूर्य्य-लोक हैं, असंख्य चन्द्रलोक और असंख्य ही पृथ्वी लोक हैं। "मरते समय मन जहां और जिस कामना में आसक्त होता है, उस कामना की पूर्ति जिस लोक और योनिमें हो सकती है, जीव वहीं जाता है*।" इस गति को प्राप्त भिन्न २ प्राणी भिन्न २ लोकों को प्राप्त होते हैं, सबके लिए कोई एक स्थान विशेष नियत नहीं है। इस प्रकार प्राणियों से जो कोई जहां भी जाता है, उसे वहां सुख ही सुख प्राप्त होता है, दुःख प्राप्त नहीं हो सकता इसलिये उस लोक या योनि का नाम, जहां भी ऐसा जीव जाता है, चन्द्रलोक या चान्द्रमसी दशा ही होती है। और इस प्रकार भिन्न भिन्न लोकों ( योनियों ) को प्राप्त होने का क्रम सबके लिये एक ही सा होता है, और वह क्रम वही है जिसका ऊपर उल्लेख हो चुका है।

---

* बृहदारण्यकोपनिषद् अ० ४ ब्रा० ४ कं० ६।

तत्ववित्त—जब सकाम कर्म कर्त्ता पाप नहीं करते, तो इनकी मुक्ति क्यों नहीं हो जाती और इन्हें चान्द्रमसी दशा से लौटना क्यों पड़ता है !

आत्मवेत्त—इसका कारण वासना है, जो सकाम कर्म से उत्पन्न होती है ?

तत्ववित—वासना क्या है ?

आत्मवेता—वासना के समझने के लिए कर्म के भेदों का जानना आवश्यक है, इसलिए पहले इन्हीं को कहते हैं:—

"कर्म के भेद"

कर्म दो प्रकार के होते हैं, जैसा कहा भी जा चुका है—

(१) सकाम (२) निष्काम। सकाम कर्म वे होते हैं, जिनमें कर्म करने से पूर्व फल की इच्छा करली जाती है, परंतु फल की इच्छा उत्पन्न न करके, जो कर्म किए जाते हैं अर्थात् जो कर्म केवल धर्म—(कर्तव्य— ) समझ कर किए जाते हैं, उनको निष्काम कर्म कहते हैं। वैदिक कर्म पद्धतिमें निष्काम कर्म का उच्चासन है, वेद और उपनिषदों ने निष्काम कर्म को मृत्यु का बन्धन काट देने का साधन माना है*। गीता ने निष्काम कर्म ही को "कर्मयोग" के नामसे पुकारा है। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को उपदेश देते हुए स्पष्ट शब्दों में कह दिया है कि:-

'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफल हेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि॥" (गीता २। ४७)

* "अविद्या मृत्युं तीर्त्वा (यजु० ४०। ११) अविद्या अर्थात् कर्म से मृत्यु के पार होकर।

अर्थात् "तेरा अधिकार केवल कर्म करने में है. फलों पर कभी नहीं—तू कर्मों के फलों का हेतु (इच्छा करके) मत हो, (परन्तु) अकर्म में भी तेरा फँसना न होवे।

जहां निष्काम कर्म का इतना उच्चासन है, वहां सकाम कर्म बन्धन का हेतु ठहराया गया है—उपनिषद् का एक वाक्य है:—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्व संशयाः।
क्षीयन्ते चास्यकर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे॥

(मुण्डकोपनिषद् २।२।८)

अर्थात् "जब हृदय की गाँठ खुल जाती है, (अर्थात् सकाम कर्मजन्य वासना नष्ट हो जाती है), सम्पूर्ण संशय दूर हो जाते हैं, और सब (सकाम) कर्म क्षीण हो जाते हैं, तब मनुष्य मोक्ष का अधिकारी होता है।" इस प्रकार निष्काम कर्म की वैदिक साहित्य में श्रेष्ठता दिखलाई गई है, और सकाम कर्म बन्धन का हेतु ठहराया गया है। मनुष्य को जहां सदैव धार्मिक जीवन रखनेका विधान है। वहां उसे यह भी बतलाया गया है, कि सब काम (फल की इच्छा न करते हुए) धर्म समझ कर करने चाहिए, क्योंकि फल की इच्छा करने ही से कर्म बन्धन का हेतु हो जाता है।

जयदत्त—परन्तु निष्काम कर्म भी तो विना इच्छा के नहीं किये जा सकते, फिर मनुष्य किस प्रकार इच्छा रहित हो सकता है?

आत्मवेत्ता—जब यह कहा जाता है कि फल की इच्छा छोड़ कर कर्म्म करे, तो इसका तात्पर्य्य यह नहीं होता कि मनुष्य कर्माऽकर्म, धर्माऽधर्म्म का विवेक न करे, अच्छी तरह

से विचार करके जो कर्म कर्तव्य ठहरें, उन्हीं को करना चाहिये फल की इच्छा न करने का भाव यह है, कि ऐसे कर्म न करें जो वासनोत्पादक हों—सकाम और निष्काम का असली फर्क यही है कि सकाम कर्म वासनोत्पादक होते है, जब कि निष्काम कर्म वासना नहीं पैदा करते।

"वासना"

**प्रेमतीर्थ**—वासना किसे कहते हैं? इस प्रश्न का उत्तर कृपा करके अब देवें।

**आत्मवेत्ता**—वासना एक प्रकार का संस्कार है, जो कृत कर्मों की स्मृति के रूप में चित्त में रहता है। इसका काम यह होता है, कि जिस कर्म की वासना होती है, उसी कर्म के फिर करने की प्रेरणा होती रहती है। यदि एक मनुष्य ने चोरी की, तो उसकी वासना उसको चोरी करने को फिर प्रेरणा करेगी। इसी प्रकार जिस कर्म की वासना होती है, उसी कर्म को पुनः करने की प्रेरणा करती रहती है। मुण्डकोपनिषद् के उपर्युक्त वाक्य में इसी वासना को "हृदय ग्रन्थि" कहा है। जब तक यह "हृदय ग्रन्थि" [वासना] मनुष्य के अन्तःकरण में रहती है, उस समय तक मनुष्य जन्म मरण के बन्धन से मुक्त नहीं हो सकता।

"वासना के अनुकूल गति"

**सुभद्रादेवी**—आगामी जन्म किस प्रकार का होगा, क्या इस पर भी वासना का कुछ प्रभाव पड़ा करता है?

**आत्मवेत्ता**—वासना के अनुकूल ही आगामी जन्म हुआ करता है। उपनिषद् में कहा गया है:—

यच्चित्तस्तेनैष प्राणमायाति प्राणस्तेजसा युक्तः।
सहात्मना यथा संकल्पितं लोकं नयति ॥

[ प्रश्नोपनिषद् ३। १० ]

अर्थात् "मरते समय प्राणी जैसी वासना से युक्त चित्त वाला होता है, उसी चित्त के साथ प्राण का आश्रय लेता है, और प्राण उदानवृत्ति के साथ युक्त हुआ सूक्ष्म शरीर सहित आत्मा के साथ संकल्पित [ वासनानुकूल ] योनि को प्राप्त कराता है"। इसी आशय को एक दूसरी उपनिषद् में भी प्रगट किया गया है:—

यं यं लोकं मनसा संविभाति विशुद्धसत्त्वः कामयते यांश्च कामान्।
तं तं लोकं जायते तांश्च कामांस्तस्मादात्मज्ञं ह्यर्चयेद्भूतिकामः ॥

[ मुण्डकोपनिषद् ३। १। १० ]

अर्थात् "निर्मल बुद्धि वाला पुरुष जिस २ लोक ( योनि ) को मन से चिन्ता करता है और जिन भोगों को [ वासना के वसीभूत होकर ] चाहता है, उस २ लोक और उन २ भोगों को प्राप्त होता है। इस लिये सिद्धि का इच्छुक आत्मवित्त पुरुष की पूजा करे।"

इन उपनिषद् के वाक्यों से स्पष्ट है, कि आगामी जन्म चित्त में जिस प्रकार की भी वासना होती हैं, उन्हीं के अनुकूल होता है। लौकिक भी इसमें प्रमाण है। "अन्तमता सो गता" अर्थात् अन्त में जैसी वासना होती है, उसी के अनुकूल गति होती है।

**प्रेमतीर्थ**—यदि चित्त वासनाओं से ख़ाली हो, तो फिर किस प्रकार का जन्म मिलेगा?

**आत्मवेत्ता**—तो फिर कोई जन्म न होगा। जब चित्त

वासना से ख़ाली होता है, तो मनुष्य जन्म मरण के बन्धन से छूट जाता है। परन्तु चित्त वासनाओं से खाली उस समय तक छूट जाता है। परन्तु चित्त वासनाओं से खाली उस समय तक नहीं हो सकता, जब तक मनुष्य सकाम कर्मों को छोड़ कर निष्काम कर्म कर्ता नहीं बनता। इसी लिए निष्काम कर्म को सकामता से तरजीह दी गई है।

**विश्वम्भर**—यदि मनुष्य निष्काम कर्म ही किया करे, तो क्या फल न चाहनेकी वजह से कर्म फलसे वंचित रहेगा ?

कर्म का फल मिलना अनिवार्य है

**आत्मवेत्ता**—कदापि नहीं; मनुष्य चाहे इच्छा करे या न करे, कर्म का फल तो अवश्य मिलता ही है वेद में कहा गया है:—

यथा तथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥

(यजुर्वेद ४० । ८)

अर्थात् "ईश्वर ने अनादि प्रजा जीव के लिये ठीक ठीक कर्म फलों का विधान किया है, जब कर्म फल देने काठीक ठीक विधान किया गया है, तो फिर कैसे सम्भव है' कि मनुष्य कर्म करके फल से वंचित रहे। चाहे सकाम कर्म करे, चाहे निष्काम, फल तो प्रत्येक कर्मका मिलता है, तरन्तु सकाम कर्म करने से हानि यह होती है, कि उससे बन्धन के मूल वासना की उत्पत्ति हो जाती है, जो मनुष्य को मरने जीने के चक्र में रखती है। इसी लिये मनुष्य को चेतावनी दी गई है, कि ऐसे कर्म करो जो बन्धन का हेतु न हों।

निष्काम कर्म की विशेषता

**विश्वम्भर**—निष्काम कर्म का फल मिल भी जावे, तो भी सर्व साधारण की उसकी उपयोगिता नहीं समझाई जा सकती।

आत्म वेता—ज़रूर और बहुत सुगमता के साथ समझाई जा सकती है, और वह इस प्रकारः—कल्पना करो कि एक गृहस्थ के घर में पुत्र का जन्म हुआ, उस गृहस्थ ने पुत्र के जन्म के साथ ही अनेक आशायें बांधी कि पुत्र बड़ा होकर बहुत धन कमायेगा, और उसे देगा, और उसकी बहुत सेवा सुश्रूषा करेगा, इत्यादि। सम्भव है; कि पुत्र उसके आशानुकूल अच्छा निकले और उस गृहस्थ की आशायें पूरी करे परन्तु यह भी सम्भव है कि पुत्र सुपुत्र न हो और गृहस्थ की आशाओं की पूर्ति न हो और गृहस्थ को दुःख उठाना पड़े। यह एक सकर्मिवादी गृहस्थ का उदाहरण हुआ। अब एक दूसरा उदाहरण लोः—कल्पना करो कि एक दूसरे गृहस्थ के घर भी पुत्र का जन्म हुआ। यह गृहस्थ निष्कामता प्रिय है। इसलिये इसने उस पुत्र के साथ अपनी कोई इच्छा नहीं जोड़ी और अपना कर्तव्य समझा कि पुत्र की रक्षा करे, और शिक्षा देकर अच्छा बना देवे, जैसा की माता पिताका कर्तव्य है। अब कल्पना करो कि इतना यत्न करने पर भी पुत्र अच्छा न हुआ और उसने माता पिता को कुछ आराम नहीं दिया, तो इस सूरत में भी उस गृहस्थ को कोई कष्ट न होगा, इसलिए कि उसने पुत्र के साथ किन्हीं आशाओं को जोड़ा नहीं था, परन्तु यदि उनके सौभाग्य से पुत्र अच्छा हुआ और उसने उस गृहस्थ युगल को प्रसन्न किया और सभी प्रकार से उनके सन्तुष्ट करने की चेष्टा की, तो उस गृहस्थ को इस सेवा सुश्रूषा से पहले गृहस्थ की अपेक्षा कहीं अधिक सुख मिलेगा क्योंकि आशा करने पर कुछ मिल जाना यदि सुखप्रद हैं, तो बिना आशा किये ही यदि कुछ मिल जावे, तो वह उससे भी अधिक सुखप्रद होगा। इन दोनों सकाम और निष्कामवादी

गृहस्थों के उदाहरण में देख लिया गया, कि निष्कामवादी गृहस्थ को दोनों सूरतों में से, चाहे पुत्र अच्छा हो या नहीं, किसी सूरत में भी दुःखी नहीं होना पड़ा, जब कि पहले सकामवादी गृहस्थ को पुत्र के अच्छा न होने पर भी क्लेशित होना पड़ा था, क्योंकि उस सूरत में उसकी आशा के विरुद्ध नतीजा निकला था।* ये रोज़मर्रा की बातें हैं और इन्हें सर्व साधारण अच्छी तरह से समझते और जानते हैं, कि कौन सी सूरत अच्छी और अनुकरणीय है। अर्थात् किसी कर्म में आशाओं का जोड़ना अच्छा है, या कर्म का बिना किसी आशा से सम्बन्धित किये कर्तव्य समझ कर करना अच्छा है। कर्म के इस विवरण से भली भांति यह बात स्पष्ट हो गई कि सकाम कर्म से एक प्रकार का संस्कार उत्पन्न होता है, जिसका नाम वासना है, और कहा जा चुका है कि जब तक मनुष्य के चित्त में यह वासना रहती है, तब तक वह आवागमन से छूट नहीं सकता यही सबब है कि दूसरी गति को प्राप्त सकाम कर्म कर्ताओं को चान्द्रमसी दशा प्राप्त करके फल समाप्त होने पर फिर लौटना पड़ता है।

तत्ववित्त—दूसरी गति प्राप्त प्राणियों को जब लौटना पड़ता है, तो किस प्रकार से उन्हें लौट कर फिर कर्म करने के लिए बाधित होना पड़ता है?

---

* आशा ही दुःख का मूल है. इस बात को एक उर्दू के कवि ने बहुत अच्छी तरह प्रदर्शित किया है:—

"रहती थी यास* दिल में तो खटका न था कोई।
उम्मीद ही ने दिल रखा है अज़ाब में" ॥

* यास = निराशा।

❀ "दूसरी गति प्राप्त जीवों के लौटने का क्रम" ❀

**आत्मवेत्ता**—चान्द्रमसी दशा को प्राप्त जीव कर्म क्षीण होने पर, जो पुनर्जन्म ग्रहण करते हैं; तो उनके लौटने का वही क्रम होता है, जिस क्रम से उन्होंने उस दशा को प्राप्त किया था। कुछ भेद अवश्य होता है—विवरण इस प्रकार है:—

( १ ) चान्द्रमसी दशा से आकाशीय दशा प्राप्त करते हैं।

( २ ) आकाशीय दशा से वायवीय ( पैतृक ) दशा को पाते हैं।

( ३ ) वायवीय दशा से धूम्र दशा को पहुँचते हैं।

( ४ ) धूम्र दशा से अभ्र ( बादलों के सूक्ष्म रूप ) अवस्था लाभ करते हैं।

( ५ ) आभ्रीय दशा से मेघ ( बरसने वाले बादल ) के साथ अन्न के द्वारा मनुष्य के शरीर में पहुंचते हैं, और वीर्य्य के साथ रज से मिल कर माता के शरीर में गर्भ रूप धारण करके मनुष्य रूप में उत्पन्न होते हैं।

**शीलभद्र**—चान्द्रमसी दशा को प्राप्त जीवों के साथ सूक्ष्म शरीर रहता है या नहीं और उन्हें स्थूल शरीर कब प्राप्त होता है ?

**आत्मवेता**—मनुष्य का जब तक वासना से छुटकारा न हो, शरीर से भी छुटकारा नहीं हो सकता—चान्द्रमसी दशा को प्राप्त जीव सूक्ष्म शरीर के साथ ही उस अवस्था को प्राप्त होते हैं। उस अवस्था को प्राप्त होने का भाव यह है, कि उन्हें स्थूल शरीर भी मिल गया।

**शीलभद्र**—इस प्रकार तो वे मनुष्य ही हो गये, फिर उनमें और मनुष्यों में अन्तर क्या रहा?

**आत्मवेत्ता**—यह ठीक है, उनमें तथा अन्य मनुष्यों में शरीरों की दृष्टि में कुछ अन्तर नहीं है—उन्हें उच्च कोटि का मनुष्य ही समझना चाहिये।

## मनुष्यों के भेद।

**प्रेमतीर्थ**—क्या मनुष्य भी कई प्रकार के होते हैं? यदि हाँ तो कितने प्रकार के?

**आत्मवेत्ता**—मनुष्य तीन प्रकार के होते हैं:—

(१) प्रथम कोटि के मनुष्य वे होते हैं, जो केवल सुखों का उपभोग करते हैं। उनका पाप से सम्पर्क न होने से किसी प्रकार का दुःख भी उन्हें दुःखित नहीं कर सकता। इन्हीं का नाम देव है। (२) दूसरे प्रकार के मनुष्य वे होते हैं जो पुण्य कर्मों के साथ समान मात्रा या न्यूनांश में पाप कर्म भी रखते हैं। और ऐसे प्राणी मनुष्य कहलाते हैं। (३) तीसरी कोटि के मनुष्य वे होते हैं, जो पापमय जीवन रखते हैं। न्यूनांश में जिनके पुण्य कर्म होते या बिलकुल नहीं होतें। ऐसे ही प्राणी दस्यु, राक्षस और पिशाच और पिशाच आदि नामधारी होते हैं। इनमें से सकाम कर्ता जीव जिन्होंने दूसरी गति को प्राप्त किया है, प्रथम श्रेणी के मनुष्यों में होते हैं। और उनकी "देव" संज्ञा होती है।

**शीलवती**—अन्न के द्वारा जीव मनुष्य शरीर में क्यों पहुंचता है। बिना अन्न के माध्यम के क्यों नहीं पहुंच जाता ?

**आत्मवेत्ता**—शरीर का आदि उपादान "कलल रस" ( Protoplasm ), मनुष्य शरीर में नहीं बनता, किंतु बनस्पतियों ही में बना करता है। इसी लिये मनुष्य शरीर में उत्पन्न होने वाले इस जीवके लिए अन्न (वनस्पति आदि) का आश्रय लेना पड़ता है।*

हर्षवर्धन—जीव गर्भ में कब आता है ?

"गर्भ में जीव कब आता है ?"

**आत्मवेत्ता**—जीव वीर्य के साथ, पिता के शरीर द्वारा माता के शरीर में पहुंच कर रज से मिलकर गर्भ की स्थापना का कारण बनता है। यदि जीव न हो, तो न गर्भ की स्थापना हो और न स्थापित गर्भ की वृद्धि।

**हर्षवर्धन**—ऐसा क्यों है ? एक पश्चिमी* विद्वान् ने तो यह लिखा है, कि उत्पत्ति के बाद बालक में जीव उस समय आता है, जब बालक बोलने लगता है।

**आत्मवेत्ता**—जगत् में वृद्धि दो प्रकार से होती है, एक भीतर से, जैसे वृक्षादि की, और दूसरी बाहर से जैसे पत्थर, लोहा आदि की. इस भेद का कारण जीव का भाव और अभाव है।

---

* अन्नादि के आश्रय लेने का तात्पर्य नहीं है कि जीव बनस्पतियों की योनि में जन्म लेता है, किन्तु आकाशादि की भांति उसका अन्न से केवल सम्बन्ध होता है। ( वेदान्त ३—१—२४ )

( १ ) Riddle of Universe bo E. Heackel.

जिनमें जीव होता है, वे वस्तुयें भीतर से बढ़ती हैं, परन्तु जिनमें जीव नहीं होता, वे बाहर से बढ़ती हैं भीतरसे नहीं बढ़ सकतीं गर्भ की वृद्धि भीतर से होती हैं । इसलिए उसमें जीवकी सत्ताका मानना अनिवार्य । यहबात की बालकमें जीव उस समय आता है, जब वह बोलने लगता है, अनर्गल है। इसका अर्थ यह हुआ कि बोलने से पहले बालक जो भी क्रियायें, हाथ पांव हिलाना, श्वास लेना, खाना, पीना, सोना, जागना, आदि करता है, वे सब जीव रहित मिट्टी के लोथड़े की हैं। यदि ऐसा ही है, तो मिट्टी, ईंट, पत्थर या लोहे के खम्भे में ये सब क्रियायें क्यों नहीं होती दिखाई देतीं ? और यदि बोलने पर ही जीव का शरीर में होना निर्भर हो, तो गूँगे आदमीको मरण-पर्यन्त जीव रहित ही समझनेके लिए बाधित होना पड़ेगा।

* "जीव पहिले पिताके शरीरमें क्यों आता है" *

**वीरभद्र**—क्या उत्पन्न होने वाला जीव पहिले पिता के शरीर में जाता और तब माता के शरीर में आता है ? यह बात तो नई सी मालूम होती है।

**आत्मवेत्ता**—बात चाहे नई-सी मालूम होती हो, परन्तु है शास्त्र प्रतिपादित, और शास्त्र भी ऐसे जिन्हें ऋषियों ने अपने अनुभव से लिखा है, जैसे उपनिषद्*—प्रत्येक मनुष्य

---

* (क) जीव औषधियों के द्वारा वीर्य्य रूप होकर स्त्री के शरीर में जाता है ( छान्दोग्योपनिषद् ५ । १० । ५ )

(ख) "ते पृथ्वीं प्राप्यान्नं भवन्ति ते पुनः पुरुषाग्नौ हूयन्ते ततो योषाग्नौ जायन्ते"। अर्थात् तब से पृथ्वी को प्राप्त होकर अन्न होते हैं और (अन्न के द्वारा) पुरुष रूप अग्नि मे जाते हैं, तब स्त्रीरूप अग्नि कुण्ड में वे ( जीव ) बनते हैं ( बृहदारण्यकोपनिषद् ६।२।१ )

(ग) वेदान्त ३ । १ । २६ में भी इसकी पुष्टि की गई है।

का अनुभव भी इसी का पोषक है, यह बात प्रायः सभी जानते और मानते हैं कि क्षेत्र में पड़ने से बीज ही उगा करता है, क्षेत्र में उगने का सामर्थ्य नहीं है, हां उसकी सहायता उगने के लिए अनिवार्य्य है। जब इस प्रकार से वृक्ष शरीर के निर्माण का कारण बीज ( वीर्य्य ) ही है, और वही भीतर से क्रमशः बढ़ता हुआ वृक्ष या शरीर के रूप में पहुंच जाया करता है, तो फिर यह मानने के लिये मजबूर होना पड़ता है, कि—जीव की सत्ता बीज ( वीर्य्य ) ही में होनी चाहिये, इस लिये जीव का उत्पन्न होने के लिए गर्भ की स्थापनार्थ प्रथम मनुष्य शरीर में आकर वीर्य्य के साथ स्त्री के शरीर में पहुंच कर रज से मिल कर गर्भ की स्थापना का कारण बनाना तर्क और प्रमाण दोनों से समर्थित है।

❀ गर्भ का दण्ड ये जीव क्यों भोगते हैं ? ❀

**श्रीहर्ष**—गर्भ में जीव का आना एक प्रकार का दण्ड समझा जाता है, तब दूसरी गति को प्राप्त जीव, जिनके बुरे कर्म नहीं होते, क्यों यह दण्ड भोगते हैं ?

**आत्मवेत्ता**—कहा जा चुका है, कि सकाम कर्म से जन्म मरण का कारण रूप वासना मनुष्यों में उत्पन्न हुआ करती है, और चान्द्रमसी दशा में पहुँचने वाले जीवों के साथ भी यह उत्पन्न वासना उनके सूक्ष्म शरीरों में निहित रहती है; कर्म फल क्षीण होने पर जीवों को इसी वासना के कारण, माता के गर्भ में आना पड़ता है। जन्म का कारण वासना, स्वयमेव उन्हीं जीवों की उत्पन्न की हुई होती है इसलिये असाक्षात् रीति से उनके कर्म ही इस जन्म का कारण होते हैं, यदि वे सकाम प्रिय न होते, तो यह वासना भी उनके गले न मढ़ती। भिन्न

भिन्न प्रकार के वासनाओं के कारण, ये जीव अपनी अपनी वासनानुकूल भिन्न लोकों में पहुँचते, और वासनाओं की भिन्नता के कारण ही, प्राप्त लोकों से लौटने पर, भिन्न स्थानों पर, जन्म पर जन्म लिया करते हैं।

* कितना समय चन्द्रमसी दशा तक पहुंचने में लगता है ? *

देशप्रिय—जीव को कितना समय चान्द्रमसी दशा तक पहुंचने में लगा करता है ?

आत्मवेत्ता—समय की नाप तोल करने के लिये मनुष्यों ने जो समय के विभाग किये हैं, चान्द्रमसी दशा में पहुँचने का समय इतना अल्प होता है, कि उन विभागों में नहीं आता *

देवप्रिय—जब जीव रात्रि-पक्ष षाण्मासादि में होकर चान्द्रमसी दशा को प्राप्त करते हैं तब तो एक वर्ष से भी अधिक समय उन्हें उस अवस्था तक पहुंचने में लगना चाहिये

आत्मवेत्ता—धूम्र, रात्रि, पक्षादि समय की नहीं, अपितु प्रकाश की मात्रा दिखलाने के लिये प्रयुक्त हुये हैं—इनके द्वारा क्रमशः प्रकाश की मात्रा-वृद्धि दिखलाई गई हैं।

× × × ×

ये प्रश्नोत्तर अभी समाप्त नहीं होने पाये थे, कि अचानक एक व्यक्ति ने बड़े मधुर स्वर से भक्ति के भाव में डूब कर गाना शुरू किया। आत्मवेत्ता सहित सभी संघ में उपस्थित सज्जनों का ध्यान उधर चला गया और सभी चित्त लगाकर उसका गाना सुनने लगे—

* वेदान्त ३। १। २३ में कहा गया है कि आकाशादि से चिरकाल तक सम्बन्ध बताना ठीक नहीं है

## जीवन ! बन तू फूल समान

पर उपकार सुरभि से सुरभित संजत हो सुखदान । जीवन०
स्वच्छ हृदय तो खिल जा प्यारे ! तू भी परम प्रेम को धारे ।
सुखदाई हो सबका जग में, पा सबसे सम्मान ॥ जीवन बन०
कठिन कण्टकों के घेरे में, दारुण दुःखदायी फेरे में ।
पकड़ कर विचलित कहीं न होना बनना नहीं अजान ॥ जीवन०
शत्रु मित्र दोनों का हित हो, पावन यह तेरा शुभ व्रत हो ॥
मधु दाता बन सब का प्यारा, तजकर भेद विधान ॥ जीवन०
दे तू सुरभि* टूटने पर भी, पैरों तले टूटने पर भी ।
इस विधि से प्रभु की माला में पा ले प्रिय स्थान ॥
जीवन बन तू फूल समान ॥ *

भजन सुन कर प्रत्येक व्यक्ति अपनी अवस्था पर विचार करने लगा। और गंम्भीरता के साथ प्रभु से याचना करने लगा कि उसकी अवस्था का सुधार हो। ऋषि आत्मवेत्ता के चेतावनी देने पर फिर संघ का कार्य प्रारम्भ हुआ, और एक देवी ने नम्रता के साथ एकप्रश्न कियाः—

### ❀ दूसरी गति का एक और बिवरण ❀

**बसन्ती देवी**—कहा यह जाता है, कि मनुष्य जब यहां मरता है, तो मृत्यु के साथ उसके दो शरीर ( १ ) स्थूल शरीर ( Dense body ) ( २ ) आकाशीय छाया शरीर ( Ethereal Double ) यहीं नष्ट हो जाते हैं अर्थात् मरने पर उससे तीन क्षुद्र द्रव्य ( Lower principles ) ( १ ) शरीर ( २ ) जीवनका साधन रूप आकाशीय छाया शरीर हमेशा के लिये

---

* सुगन्धि

पृथक् हो जाते हैं। मर कर वह कामलोक में पहुंचता है। काम लोक में उसके पास केवल एक शरीर, जिसे इच्छा ( Shell-Desire body or Body of Astral ) कहते हैं, रहता है। और प्रथम के ३ क्षुद्र द्रव्य नष्ट होकर इस नये लोक में इस शरीर के साथ बाकी चार उच्च द्रव्य कामरूप ( Body of Kama ) आत्मा, बुद्धि, और मन रहा करते हैं। काम लोक से पृथक् होने पर ( इस पृथकता का नाम द्वीतीय मृत्यु ( 2nd Death है ) वह देवाचन ( Abode of Gods or the landof Bliss ) में पहुँच जाता है। जब प्राणी काम लोक को छोड़ता है, तो एक सुहनरी पुल,जो साथ सुनहरी पर्वतोंके मध्य में पड़ता है ( Golden bridge leading to the seven golden mountains ) पार करना होता है। द्वितीय मृत्यु के बाद, देवाचन में पहुंचने से पूर्व अचेतन अवस्था( Pre-devachanic unconsciousness) होती है, परन्तु देवाचन में पहुंचने पर उसे चेतना प्राप्तहो जाती है, और इस प्रकार देवाचन, मानो चेतनावस्था ( State of consciousness ) है जब वे कारण जो प्राणी को देवाचन में ले गये थे, समाप्त हो जाते हैं, तब जीव को फिर प्राकृतिक स्थूल जगत् में आने की इच्छा प्राप्त होने लगती है, और इस इच्छा के उत्पन्न होने पर उसे फिर इस संसार में जन्म लेकर अपनी पुरानी जन्म वासनाओं से, जो यहीं पहले जन्म में उत्पन्न होकर उसके कामलोक में जाने पर नष्ट न होकर तिरोहित अवस्था में रहती हैं, भेंट करनी पड़ती है *।

**आत्मवेत्ता**—पृथक् २ व्यक्तियों की वर्णन-शैली पृथक् पृथक् हुआ करती है। यह जो कुछ देवी ! तुमने सुनाया, इस में कुछ तो उपनिषदोंका तथ्य है, और कुछ साम्प्रदायिकवाद।

सुनहरी पुल से गुज़रना आदि तो साम्प्रदायिक वाद हैं। परन्तु देवाचन से लौटने का अभिप्राय चन्द्रलोक से लौटने का है। और पुरानी पापवासना का तात्पर्य्य उन्हीं वासनाओं से है जो सकाम कर्म से उत्पन्न हुआ करती हैं और प्राणी को पुनः आवागमन के चक्र में लानेका कारण बनती हैं। ये उपनिषदों का तथ्य ( सच्चाई ) है और इस प्रकार देखने से इस वर्णन और जो कुछ हमने सुनाया उसमें अधिक अन्तर नहीं है। और परिणाम दोनों का निश्चित रीति से कहा जा सकता है, कि एक ही है।

इतना उपदेश देने के बाद आज का संघ समाप्त हुआ, और संघ की समाप्ति के साथ ही मरने के बाद की दूसरी गति की कथा भी समाप्त हुई।

"चौथा परिच्छेद"

"छठा सङ्घ"

# मरने के बाद की तीसरी गति।

संघ संगिठित है—शान्ति का वायु प्रवाहित है-सुंदर सुहावने और सुगन्धित पुष्पों की भीनी भीनी महंक वाटिका में आ रही है—आत्मवेत्ता ऋषि की तपोभूमि में पग धरते ही हृदय आस्तिकता के भावों से पूरित हो उठता है-ईश्वर के आह्लादप्रद प्रेम से चित्त आह्लादित हो जाता है—इस प्रकार के वातावरण में बैठे हुए अनेक नर-नारी मृत्यु की अन्तिम समस्या का हाल सुनने को उत्सुक हो रहे हैं। आत्मवेत्ता के आने

और व्यास गद्दी पर आसीन होने पर सब के मुखड़े प्रसन्नता के साथ खिल उठते हैं—हृदय को शान्ति देने वाली वाणी से ऋषि ने अपना शिक्षा-प्रद उपदेश आरम्भ किया।

❀ "मरने के बाद तीसरी गति" ❀

**आत्मवेत्ता**—मरने के बाद की दो गतियों का आप हाल सुन चुके हैं। आज तीसरी और अन्तिम गति की बात कहनी है। जो पुरुष निष्कामप्रिय हैं और निष्काम कर्म करना ही जिन्होंने अपने जीवन का लक्ष्य बना रक्खा है, और जो श्रद्धामय और तपस्वी जीवन व्यतीत करते हैं, ऐसे पुरुष जीवनकाल ही में जीवनमुक्त कहलाते हैं और जब मरते हैं, तब आवागमन ( मृत्यु ) के बन्धन से छूट कर मुक्त हो जाते हैं—वे मर कर किस क्रम से ब्रह्म को प्राप्त करते हैं, उसका विवरण इस प्रकार है:—

## उसका क्रम: —

(१) प्रथम वे आर्चिषी+ दशा को प्राप्त करते हैं।
(२) आर्चिषी दशा से आन्तिकी ( दिन की ) दशा को
(३) उससे पाक्षिकी ( शुक्ल पक्ष की ) दशा को।
(४) उससे उत्तरायणी‡ षाण्मासिकी दशा को।
(५) उससे सम्वत्सरी ( पूरे वर्ष की ) दशा को।
(६) उससे सौरी ( सूर्य्य समान ) दशा को।
(७) उससे चान्द्रमसी दशा को।
(८) उससे वैद्युती ( बिजली के समान ) दशा को।
(९) उससे ब्रह्मलोक को प्राप्त करते हैं।

---

+ अर्चि = अग्नि की ज्वाला, लपट।

‡ जिन छः मास में सूर्य्य उत्तर की ओर रहता है।

इस अवस्था को प्राप्त कर लेना मनुष्य के जीवनोद्देश्य की चरम सीमा और मनुष्य की अन्तिम गति है।

ये अवस्थायें भी क्रमशः प्रकाश की वृद्धि को प्रकट करती हैं। वैद्युती दशा को प्राप्त करने बाद के मनुष्य उस ज्योति को प्राप्त कर लेता है, जिस ज्योति को अलौकिक और विकार रहित ज्योति() कहा जाता है और जिस ज्योतिमय अवस्था के लिये कहा जाता है कि वहां अग्नि, विद्युत, चन्द्रमा, तारे, सूर्य्य का प्रकाश नहीं पहुँच सकता[]। संसार के जितने भी उत्तम से उत्तम प्रकाश हैं, उनमें से किसी को भी उस दिव्य और अलौकिक ज्योति की उपमा नहीं दी जा सकती! इतना कह कर ऋषि चुप हो गये। आत्मवेत्ता ऋषि के इस उपदेश के सुनने से संघमें उपस्थित प्रायः सभी नर-नारियों के मुखड़ोंसे छाया हुआ गम्भीरता का भाव प्रदर्शित होने लगा मानो उनमें से प्रत्येक इसी अवस्था को प्राप्त करने का उत्सुक है। कुछ देर तक सन्नाटा-सा छाया रहा और जो जहां था, गतिशून्य-सा दिखाई देता था, मानो कोई टस से मस ही नहीं होना चाहता है। यह दशा बहुत देर तक नहीं रही। अन्त को मौन मुद्रा टूटी और उपदेश के सम्बन्ध में अनेक शंकाओं के समाधान करने की इच्छा जागृत हुई और इस प्रकार संघ में से एक व्यक्ति बोलाः—

❀ "सौरी और चान्द्रमसी दशाओं का भेद" ❀

**उमाकान्त**—यदि यह अवस्थायें क्रमशः प्रकाश वृद्धि ही प्रकट करती हैं, तो सौरी दशाके बाद चान्द्रमसी दशा क्यों

---

() "ज्योतिरिवाधूमकः"—( कठोपनिषद् ४। १३ ),

[] मुण्डकोपनिषद् २। २। १०

है ? सूर्य्य का प्रकाश तो चन्द्रमा से अधिक ही होता है ?

**आत्मवेत्ता**—बेशक ! सूर्य्य का प्रकाश चन्द्रमा से अधिक होता है, परन्तु दोनों के प्रकाशों में प्रकार का भेद है। सूर्य का प्रकाश उष्णता पूर्ण होता है, परन्तु चन्द्रमा के प्रकाश में शीतलता होती है। उष्णता उद्विग्नता ( अशान्ति ) का और शीतलता ( शान्ति ) का द्योतक है, इसी लिये चन्द्रमा≡ सुख प्रद समझा जाता है। अतः स्पष्ट है कि—चन्द्र का प्रकाश सूर्य के प्रकाश से गुण की दृष्टि से अच्छा समझा जाता है। इसके अतिरिक्त यहां चान्द्रमसी शब्द नक्षत्र विशेष से सम्बन्धित अवस्था प्रकट नहीं करता, किन्तु उस प्रकाश का प्रकाश है, जो सूर्य्य के प्रकाश से अच्छा हो। इसी प्रकार उससे भी अच्छे प्रकाश का द्योतक वैद्युती अवस्था है।

❀ "ब्रह्मलोक क्या है ?" ❀

**चन्द्रकान्त**—ब्रह्मलोक क्या किसी स्थान विशेष का नाम है, जो मुक्त जीवों के निवास का स्थान समझा जाता है?

**आत्मवेत्ता**—ब्रह्मलोक किसी स्थान विशेष का नाम नहीं है। नहीं मुक्त जीव किसी एक स्थान विशेष पर एकत्रित निवास करते हैं। ब्रह्मलोक का भाव यह है, कि प्राणी उस अवस्था को प्राप्त कर लेवे, जिसमें उसकी अत्यन्त समीपता और प्रकृति से निवृत्ति होती है ब्रह्म की समीपता का भाव आनन्द की प्राप्ति और प्रकृति से निवृत्ति का तात्पर्य दुःखों की

---

≡ चिदाह्लादे धातु से "चन्द्र" शब्द सिद्ध होता है—इसी लिये चन्द्रमा आह्लादप्रद माना जाता है।

अत्यन्त निवृत्ति से है। इस अवस्था को प्राप्त जीव पूर्ण स्वतन्त्र होते हैं किसी प्रकार का बन्धन नहीं होता और इच्छानुसार जहां चाहे विचरते हैं।

❀ क्या मुक्त जीव कोईशरीर रखते हैं? ❀

**चन्द्रकान्ता**—क्या ये जीव सूक्ष्म और कारण शरीर भी नहीं रखते? स्थूल शरीर तो आवागमन के बन्धन से रहित होने पर रह ही नहीं सकता?

**आत्मवेत्ता**—नहीं मुक्त जीव किसी प्रकार का शरीर नहीं रखते, विशुद्ध मुक्तात्मा प्रत्येक प्रकार के मल और विकारों से रहित हो जाता है, इसीलिये प्राकृतिक बन्धन उसे पीड़ित नहीं कर सकते।

❀ मुक्त जीव के साथ क्या जाता है? ❀

**विद्याभूषण**—तो क्या इसका मतलब यह है कि मुक्त जीव के साथ कुछ भी नहीं जाता?

**आत्मवेत्ता**—नहीं मुक्त जीव के साथ उसके किये हुये निष्काम कर्म और उपार्जित विज्ञान जाते हैं इनके सिवाय और कुछ नहीं जाता†। इन्हीं कर्म और विज्ञान के योग का नाम "धर्म" है।

---

१—[क]मुण्डकोपनिषद् में कहा है:—
गतः कलाः पञ्च दश प्रतिष्ठा देवाश्च सर्वे प्रति देवतासु।
कर्माणि विज्ञानमयश्च आत्मा परेऽव्यये सर्वे एकी भवन्ति॥ मु० ३।२।७।

---

❀ मुक्ति का कारण ❀

**उपमन्यु**—मुक्ति ज्ञान का फल है या कर्म का?

**आत्मवेत्ता**—न केवल ज्ञान का और न केवल कर्म का—किन्तु ज्ञान और कर्म के समुच्चय का फल मुक्ति है†—कर्म की अपेक्षा करके केवल ज्ञान का आश्रय लेना या ज्ञान की अपेक्षा करके केवल कर्म का सहारा ढूढना दोनों मनुष्यों को अन्धकार में ले जाने वाले हैं+ ।

* मुक्ति से लौटना *

**उपमन्यु**—यदि मुक्ति ज्ञान और कर्म के समुच्चय का फल है तो नित्य नहीं हो सकती—इसी लिये नित्य मुक्ति मानने की इच्छा से अनेक आचार्य मुक्ति को केवल ज्ञान का फल मानते हैं और वे कर्म को अविद्या कह कर त्याज्य समझते हैं

---

अर्थात् जीवन मुक्त प्राणी जब शरीर छोड़ता है, तब उसकी १५ कलायें जिनसे तीनों प्रकार के शरीर बनते हैं, अपने कारण में, और सम्पूर्ण इन्द्रियां भी अपने २ कारणों में लीन हो जाते हैं-इस प्रकार जब एक मात्र विशुद्ध आत्मा रह जाता है, तब बतलाते हैं कि वह आत्मा कर्म और विज्ञान के साथ परम अव्यय ईश्वर को प्राप्त कर लेता है ।

(ख) बृहदारण्य कोपनिषद् में कहा गया है कि शरीर छोड़ने वाले के साथ—

"तं विद्याकर्माणि समन्वार भेते पूर्व प्रज्ञाच्च"—विद्या ( ज्ञान ), कर्म और पूर्व प्रज्ञा ( बुद्धि-ज्ञान ) जाते हैं ।

( देखो बृ० ४ । ४ । २)

(†) विद्यां चाविद्याञ्च यस्तद्वेदोभय ँ सह ।

× अविद्यामृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते॥ (ईशोपनिषद् मंत्र ११ )

अर्थात् ज्ञान और कर्म दोनों को जो प्राणी साथ २ काम में

जाता है, वह कर्म से मृत्यु को पार करके ज्ञान से अमरत्व को प्राप्त करता है-

(३) देखो ईशोपनिषद् मंत्र ६

---

**आत्मवेता**—मुक्ति केवल ज्ञान का फल नहीं है, जैसा ऊपर कहा जा चुका है—वेद उपनिषद् और गीता आदि सभी सत् शास्त्र मुक्ति का कारण ज्ञान के साथ कर्म को भी समझते हैं। गीता के एक प्रश्नोत्तर का विवरण सुनाते हैं—

* "कृष्णार्जुन सम्बाद" *

**अर्जुन**—हे जनार्दन! यदि आपके मन में कर्म से ज्ञान श्रेष्ठ है, तो मुझे क्यों घोर कर्म (युद्ध) में लगाते हो, आप के रिले मिले-से वाक्यों से तो मेरी बुद्धि और मोह (भ्रम) में पड़ती है—निश्चय के साथ वह एक बात कहो, जिससे मेरा कल्याण होवे—

**कृष्ण**—संसार में दो प्रकार की श्रद्धा है—(१) सांख्याचार्यों की ज्ञान योग से उत्पन्न और (२) योगियों की कर्म योग से—न तो कर्मों के न करने ही से कोई नैष्कर्म्य के फल को पाता है और न त्यागसे ही सिद्धि प्राप्त होती है—क्योंकि कभी क्षण भर भी कर्म न करता हुआ नहीं रह सकता है। प्रकृति के गुणों (सत्व, रजस, तमस्) से विवश होकर सब को कर्म करने पड़ते हैं-जो कोई मूढ़ पुरुष कर्मेंद्रियों को रोक कर मन से इन्द्रियों के विषय का ध्यान करता है, वह मिथ्या-आचार वाला होता है हां. जो आसक्ति रहित मनुष्य मन से इन्द्रियों को वश में करके कर्मेन्द्रियों से कर्मयोग का अनुष्ठान भी करता है, वह विशेषता वाला होता है। अकर्म से कर्म

श्रेष्ठ है, इसलिए नियत कर्म कर—क्योंकि बिना कर्म तो तेरी देह यात्रा भी सिद्ध न होगी—प्रजापति ने, प्रारम्भ में यज्ञों सहित प्रजाओं को उत्पन्न करके, उनको उपदेश दिया कि इस यज्ञ से सब कुछ उत्पन्न करलो, यह तुम्हारी मनोवांछित कामनाओं का पूर्ण करने वाला होगा। इस यज्ञ से तुम यज्ञ-संबन्धी अग्नि वायु आदि देवों को प्रसन्न करो, वे देव तुमको प्रसन्न करेंगे।

इस प्रकार एक दूसरे को प्रसन्न करने ही से कल्याण हो सकता है। यज्ञ न करके जो मनुष्य देवों का भाग, उन्हें दिये बिना, यज्ञ से उत्पन्न भोगों को भोगता है, वह चोर है। यज्ञ करके, यज्ञ शेष का भोजन करने से मनुष्य पापों से छूटता है परन्तु वे मनुष्य जो केवल अपने लिए ही भोजन बनाते हैं, वे भोजन नहीं अपितु पापही को खाते हैं। अन्न से प्राणी उत्पन्न होते हैं, अन्न बादलों से (वर्षा द्वारा) पैदा होता है और बादल से यज्ञ बनते हैं यज्ञ कर्मसे होता है, कर्म वेद से उत्पन्न होते हैं और वेद अविनाशी ब्रह्म से प्रगट होते हैं। इस प्रकार सर्व व्यापक ईश्वर यज्ञ में प्रतिष्ठित है। जो प्राणी ईश्वर के चलाये हुये इस चक्र के अनुकूल व्यवहार नहीं करता, वह पापी और इन्द्रियों का दास है, उसका संसार में जीना व्यर्थ ही है। इसलिये तू कर्म में लिप्त हुये बिना, निरन्तर पुरुषार्थ कर। इस प्रकार कर्म्म-जन्य वासना में लिप्त हुये बिना, जो मनुष्य कर्म्म करता है वह परमेश्वर को प्राप्त कर लेता है। जनकादि ने कर्म्म ही से सिद्धि प्राप्त की थी। लोक संग्रह पर ध्यान देते हुए भी तुझको कर्म्म करना चाहिए।

---

(१) यह कृष्णार्जुन सम्वाद गीता के तृतीयाध्याय में अङ्कित है।
(देखो श्लोक १ से २० तक)

**आत्मवेत्ता**—इस उत्तर से स्वयं योगिराज कृष्ण ने स्पष्ट रीति से कर्म को ईश्वर प्राप्ति का साधन बतलाया है और जनकादि का उदाहरण भी दिया है। ऐसी अवस्था में जो कर्म की अपेक्षा करके केवल ज्ञान का आश्रय लेते हैं, वे उपनिषद्, वेदों के सिवा कृष्ण महराज की शिक्षा का भी निरादर करते हैं और इसलिये ऐसे व्यक्तियों की बात ध्यान देने योग्य नहीं है। कर्म से जगत् बना तथा स्थित है और सारे काम जगत् के कर्म ही से चल रहे हैं। कर्म का निरादर करके तो कोई मनुष्य, जैसा कृष्ण ने भी उत्तर में कहा है, अपना जीवन भी स्थिर नहीं रख सकता।

### * पुरुषार्थ और प्रारब्ध *

**सत्यकाम**—जगत् में मनुष्यों का नाम तो उनकी प्रारब्ध से चला करता है, फिर कृष्ण महाराज ने यह कैसे कहा कि मनुष्य विना पुरुषार्थ के अपना जीवन स्थित नहीं रख सकता?

**आत्मवेत्ता**—पुरुषार्थ और प्रारब्ध का झगड़ा अधिकतर मनुष्यों की अज्ञता पर निर्भर है।

### * कर्म की अवस्थायें *

कर्म की तीन अवस्थायें हैं (१) जब मनुष्य कर्म करता है तब कर्म की पहली अवस्था होती है, उस में कर्म को "क्रियमान" कहते हैं। (२) जब कर्म के करने की, क्रियमान अवस्था समाप्त हो जाती है, तब कर्म की दूसरी अवस्था होती है और उसमें उसका नाम "संचित" होता है। (३) जब सञ्चित कर्मों का फल मिलने लगता है, तब कर्म की तीसरी अवस्था होती है और उस अवस्था में कर्म का नाम "प्रारब्ध" हो जाता

है। अतःस्पष्ट है कि प्रारब्ध कोई स्वतन्त्र वस्तु नहीं है किन्तु किये हुये कर्मों की ही एक अवस्था है, यदि मनुष्य पुरुषार्थ न करे, तो प्रारब्ध बन नहीं सकती।

**क्रियापटु**—क्या हृदय की शुद्धि केवल ज्ञान से नहीं हो सकती? क्या हृदय की शुद्धि के लिये भी कर्म की आवश्यक्ता है?

❀ ईश्वर प्राप्ति के अर्थ एक यज्ञ और एक प्रार्थना ❀

**आत्मवेता**—हां! हृदय की शुद्धि भी बिना कर्म के नहीं हो सकती। इसलिये उपनिषद् में एक क्रिया का विधान है जो यज्ञ और उसकी बाद की प्रार्थना से पूरी होती है। उस का विवरण इस प्रकार है। इससे साफ़ ज़ाहिर हो जायगा कि क्रियाकलाप के बिना अन्तकरण की शुद्धि नहींहोती और शुद्धि न होने से बुद्धि कलुषित हो महत्ता प्राप्त करने में असमर्थ हो जाती है।

महत्वाकांक्षी अमावस्या को यज्ञ करने की दीक्षा लेकर १५ दिन तक यम, नियम का पालन करते हुये प्रणव और गायत्री मन्त्र का जप करे। पूर्णिमा की रात्री में नियत औषधियों ❋ के मन्थ (रस) को दही और शहद मिला कर एक पात्र में रक्खे और इस प्रकार घृत की आहुति अग्नि में देकर श्रुवे में बची हुई घृत की बूंदों का उसी औषधि के सार वाले

---

[1] नीति में कहा है:—

पूर्वजन्म कृत कर्म तद्दैवमिति कथ्यते।
तस्मात् पुरुषकारेण यत्न कुर्यादतन्द्रितः॥ [पंचतंत्र]

अर्थात् पूर्व किये कर्मों ही का नाम दैव (प्रारब्ध या तकदीर) होताहै। इसलिये मनुष्यको यत्नपूर्वक पुरुषार्थ करना चाहिये

पात्र में डालता जावे। आहुति इन वाक्यों से देवेः—

[१] ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय स्वाहा।

[२] वशिष्ठाय स्वाहा।

[३] प्रतिष्ठाय स्वाहा।

[४] सम्पदे स्वाहा।

[५] आयतनाय स्वाहा।

❀ प्रार्थना की विधि ❀

इसके बाद अग्नि-कुण्ड से हट कर अञ्जलि में घृत की बूंद निश्रित उस मन्थ को लेकर इस प्रकार मानसिक प्रार्थना करेः-

"भगवन्! आप अम+ नाम वाले हैं, जगत् का आधिपत्य रखने के लिये आप में अमा (शक्ति) है आप ज्येष्ठ श्रेष्ठ और सर्वाधिपति हैं, आप कृपा करके मुझे भी ज्येष्ठ श्रेष्ठ और अधिपति बनावें।" इस प्रार्थना के बाद निम्न प्रकार आचमन करेः-

*अनेक औषधियां हैं जिनके प्रयोग से चित्त शान्त होता है, उन्हीं का यहां संकेत किया गया है।

+ गमन शील होने से ब्रह्माण्ड का नाम "अ" है—"म" के अर्थ नापने या निर्माण करने के हैं। ईश्वर ब्रह्माण्ड का निर्माता है, इस लिये उसका नाम "अम" है, उसकी शक्ति "अमः" कहलाती है।

"तत्सवितुर्वृणीमहे" इस से एक आचमन।

"वयं देवस्य भोजनम्" इससे दूसरा आचमन॥

"श्रेष्ठं सर्वधातमम्" इससे तीसरा आचमन।

"तुरं भगस्य धीमहि" इससे बाकी सब पी लेवे॥

जिस पात्र में आचमन किया है, उसे शुद्ध करके और कुण्ड के पश्चिम भाग में बैठ कर मौनावलम्बी सर्व प्रकार की इच्छाओं से हृदय शून्य रखते हुये ईश्वर के ध्यान में लीन हो जावे। यदि यह तल्लीनता पूरी हो जावे और आत्मा मातृ-रूपा ब्रह्म

की "श्रमा" (शक्ति और विभूति) का अनुभव करने लगे, तो कर्म को सफल समझे। * इस प्रकार यह तथा अन्य अनेक क्रियायें उपनिषद् और योग आदि शास्त्रों में हृदय की शुद्धि के लिये बताई गई हैं और साफ़ कह दिया है कि जल से शरीर सत्याचरण से मन, विद्या और तप से आत्मा और ज्ञान से बुद्धि शुद्ध हुआ करती है। +

### ❀ मुक्ति की अवधि और उससे भेद ❀

**सत्ययज्ञ**—मुक्ति कर्म और ज्ञान के समुच्चय का फल होने से अनित्य है अनित्य होने से सावधि हुई तो फिर उसकी अवधि क्या है? और सब मुक्त जीवों की अवधि एक ही है या इसमें कुछ विभिन्नता है?

---

* छांदोग्य उपनिषद् प्रपाठक ५ खण्ड २ श्लोक ४—८।

+ देखो मनुस्मृति अध्याय ५ श्लोक १०

अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यन्ति मनः सत्येन शुद्ध्यति।
विद्या तपोभ्यां भूतात्मा बुद्धि ज्ञानेन शुद्ध्यति॥

---

**आत्मवेत्ता**—मुक्तिमें प्रवेश करनेवाले जीव पांच श्रेणियों में विभक्त हैं, उनका विवरण इस प्रकार है:—

| सं० | मुमुक्षुओं के पद | मुक्तिकी मात्रा | वर्ष विवरण | साधन |
|---|---|---|---|---|
| १ | वसु | २२५० वर्ष+ अहोरात्र या ६¼ ब्रह्म वर्ष | १ नील ६४ खर्ब ४० अर्ब वर्ष | ऋग्वेद |
| २ | रुद्र | ४५०० वर्ष या १२½ ब्रह्मवर्ष | ३नील८८ खर्ब ८० अर्ब | ऋग्वेद + यजुर्वेद |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ३ आदित्य | १००० वर्ष या २५ ब्रह्मवर्ष | ७नील ७७खर्ब ६७ अर्ब | ऋग्वेद + यजु० तथा सामवेद |
| ४ मरुत | १८००० वर्ष या ५० ब्रह्म वर्ष | १५नील५५खर्ब २०अर्ब | चारों वेद |
| ५ साध्य | ३६००० वर्ष या १०० ब्रह्म वर्ष (एक परान्तकाल) | ३१नील १०खर्ब ४० अर्ब | चारों वेदों के गुह्य-आदेश |

❀ मुक्ति के भेदों का कारण ❀

प्राचीन शाल—मुक्ति के इन भेदों का कारण क्या है?

---

+ ४३ लाख २० हज़ार वर्षों की एक चतुर्युगी होती है। २ हज़ार चतुर्युगी का एक अहोरात्र अर्थात् एक सृष्टि और एक महाप्रलय। ३० अहोरात्र का एक ब्रह्ममास और ऐसे १२ मासों का १ ब्रह्म वर्ष और ऐसे १०० ब्रह्म वर्षों का एक परांत काल होता है।

‡ देखो छान्दोग्य उपनिषद् में मधु वाच्य ब्रह्मोपासना, जिस प्रकरण का नाम ब्रह्मोपनिषद् है। (छान्दोग्य प्रपाठक ३ खण्ड ६ से १० तक)

---

आत्मवेत्ता—कारण का संकेत तो साधन के नाम से पहिले उत्तर में कर दिया गया है। एक व्यक्ति ने जिसने केवल एक वेद का ज्ञान प्राप्त किया और उसी प्राप्त ज्ञान के अनुकूल आचरण किया, उससे उसके ज्ञान और कर्म अधिक हैं, जिसने दो वेदों का अध्ययन किया है। इसी प्रकार बराबर उत्तरोत्तर प्रत्येक श्रेणी में कर्म और ज्ञान की मात्रा अधिक होती गई इसी कर्म और ज्ञान के मात्रा-भेद से मुक्ति की मात्रा में भी

भेद होते हैं।

**प्राचीन शाल**—तो जिन व्यक्तियों के ज्ञान और कर्म मात्रा में कम थे, उनकी मुक्ति ही क्यों होती है ?

**आत्मवेत्ता**—यह बात पहिले कही जा चुकी है-कि जब मनुष्य सकाम कर्म, जो वासना—उत्पादक होते हैं, छोड़ कर केवल निष्काम कर्म करने लगता है, तोउससे न केवल आइन्दा वासना नहीं बनती, किन्तु पिछली बनी हुई वासनायें भी नष्ट होजाती हैं और जन्म मरण का कारण वासना ही है। इसलिये उपासक ज्ञान प्राप्ति के किसी दर्जे में भी क्यों नहो, जिस समय भी निष्कामता के प्रभाव से उसका चित्त वासना रहित हो जायगा, वह आवागमनके बन्धनसे मुक्त होकर मुक्त होजायगा ऐसी अवस्था में ज्ञान और कर्म के समुच्चय के भेद से उसका फल रूप मुक्ति भी भेद वाली हो जाती है और यही भेद उपनिषद में दिखलाया गया है।

❀ "क्या मुक्ति के लिए वेदाध्ययन आवश्यक है ?" ❀

**तपोनिधि**—ऊपर मुक्ति के साधनों में से प्रत्येक साधन में एक न एक वेद का अध्ययन मुक्ति के प्राप्त करने के लिए आवश्यक दिखलाया गया है, क्या इनका मतलब यह है कि-जिन्होंने वेद नहीं पढ़े हैं, उनकी मुक्ति ही नहीं हो सकती ?

**आत्मवेत्ता**—मुक्तिके लिए वेदका अध्ययन आवश्यक नहीं, परन्तु वेद प्रतिपादित मुक्तिके साधनोंका ज्ञान आवश्यक और अनिवार्य है। यह ज्ञान चाहे स्वयं वेद पढ़कर प्राप्त किया जावे या वेदानुकूल ग्रन्थोंके अध्ययन से उपलब्ध किया जावे। चाहे किसी श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ से प्राप्त कर लिया जावे। वेदका

ज्ञान प्राचीन ऋषियों की प्रचार संलग्नता (Missionary spirit के कारण जगत भर में फैल चुका था और अबभी फैला हुआ है जहाँ कहीं भी मुक्ति के साधन, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, निर्लोभता, शौच, सन्तोष, तपः, स्वाध्याय और ईश्वर-भक्ति आदि गुणों को देखो, तो समझ लो कि इनका आदि स्रोत वेद है और ये सब वेदोक्त ज्ञानही है। इन गुणोंका यह समझे बिना भी कि ये वेद ज्ञान है, यदि कोई पालन करता है तो वह भी अवश्य मुक्ति का अधिकारी हो सकता है, चाहे वह किसी देश, जाति, रंग या मत में पैदा हुआ है।

**सत्यव्रत**—मृत्यु के बाद की दूसरी गति में सूर्य्य के दक्षिणायन और तीसरी गति में उत्तरायण होने की बात कही गई है! क्या इसका भाव यह है कि सूर्य्य के उत्तरायण होने की दशा ही में मरने से मुक्ति हो सकती है ? अन्य अवस्था में नहीं।

**आत्मवेत्ता**—किसी अवस्थामें भी साधन सम्पन्न प्राणी की मृत्यु हो, मोक्ष अधिकारी होने पर उसकी मोक्ष होजायगी दिन रात, पक्ष, षण्मासादि समय के किन्हीं विभागों में कोई न्यूनता या विशेषता नहीं।*

* "सात लोक" *

**सत्यव्रत**—सात लोक जो कहे जाते हैं, वे कौन २ से हैं उनका भाव क्या है ? इन्हीं लोकों में एक ब्रह्मलोक कहा जाता

---

* "अतश्चायनेऽपि दक्षिणे" (वेदान्त दर्श ४।२।२०)

अर्थात् दक्षिण मार्गगत मृत्यु उपासक के मुक्ति रूप फल में भी कोई बाधा नहीं है।

है, जिसकी कुछ बात पहिले हो चुकी है।

आत्मवेत्ता—३३ देवताओं की गणना में आठ वसु हैं, वसु उन स्थानों का नाम है, जहां प्राणी वस सकते हैं, उन्हीं आठ वसुओं को ६ लोकों में विभक्त कर दिया है। उसका विवरण इस प्रकार है:—

| ८ वसु | ६ लोक | ८ वसु | ६ लोक |
|---|---|---|---|
| (१) अग्नि | १-पृथ्वी | (२) पृथ्वी | २-वायु |
| (३) वायु | ३-अन्तरिक्ष | (४) अन्तरिक्ष | ४-आदित्य = (१,५,तीनोंकेस्थानमें) |
| (५) आदित्य | ५-चन्द्रमा | (६) द्यौः | ६-नक्षत्र |
| (७) चन्द्रमा | ७-ब्रह्मलोक | (८) नक्षत्र | |

इन में उपर्युक्त भांति आठ वसुओं के स्थान में १ से ६ तक लोक हैं और सातवां लोक ब्रह्मलोक है जो वसुओं से बाहिर है, प्राणी इन्हीं सात लोकों में से किसी न किसी लोक में रहता है। जब तक कि जीव आवागमन के बन्धन से नहीं छूटता, तब तक उसे इन्हीं १ से ६ तक के लोकों में रहना पड़ता है, परन्तु इस बन्धन से छूट कर ब्रह्म को प्राप्त करके ब्रह्मलोक वासी बन जाता है। यह कहा जा चुका है कि ब्रह्म विभु होने से सर्वदेशी है, इसलिए उसका कोई स्थान विशेष नहीं, इसलिए ब्रह्म लोक प्राप्त करके जीवात्मा जब ब्रह्मानन्द का अनुभव करने लगता है, उसको ब्रह्म लोक प्राप्त हुआ समझा जाने लगता है। इन्हीं सप्त लोकों का नाम एक और प्रकार से भी लिए जाते हैं और वे इस प्रकार हैं—

## ❀ सप्त लोक ❀

(१) पृथ्वी = भूः (२) अन्तरिक्ष = भुवः (३) चन्द्रमा =

स्वः ( ४ ) वायु = महः ( ५ ) नक्षत्र = जनः ( ६ ) आदित्य = तपः ( ७ ब्रह्म = सत्यम् ।

सत्यव्रत—इनमें नरक लोक का नाम कहीं नहीं आया ?

**आत्म वेत्ता**—जितनी भी भोग योनियां हैं, सब नरक ही हैं-इनके सिवा नरक किसी स्थान विशेषका नाम नहीं हैं।

**रत्नमणि**—"देवयान" और "पितृयान" क्या हैं ?

**आत्मवेत्ता**—मृत्यु के बाद दूसरी गति प्राप्त प्राणियों के मार्ग का नाम "पितृयान" और तृतीय गति प्राप्त जीवों के मार्ग का नाम "देवयान" कहलाता है । ये कोई इस प्रकार के मार्ग नहीं हैं, जिन्हें हम मार्ग शब्द से पृथ्वी पर समझते हैं, परन्तु जीवों में क्रमशः प्रकाश की वृद्धि के जो दरजे होते हैं, उसी विकास क्रम का नाम "पितृयान" और "देवयान" है ।

* "क्या जीव १२ दिन के बाद जन्म लेता है ?,, *

**तत्वदर्शी**—क्या यह ठीक है कि—मनुष्य मरने पर १२ दिन के बाद जन्म लेता है ?

---

* १२ दिन के बाद पैदा होने का विचार भ्रमात्मक है, और एक वेद मंत्र के ठीक न समझने का कारण कदाचित् उत्पन्न हुआ है । मंत्र इस प्रकार है:—

सविता प्रथमेऽहन्नग्निर्द्वितीये वायुस्तृतीये आदित्यश्चतुर्थे ।
चन्द्रमा पञ्चम ऋतुः षष्ठे मरुतः सप्तमे बृहस्पतिरष्टमे ।
मित्रो नवमे वरुणो दशम इन्द्र एकादशे विश्वे देवा द्वादशे ॥

( यजुर्वेद अध्याय ३९ मन्त्र ६ )

यह मंत्र तृतीय गति प्राप्त प्राणियों के मार्ग (देवयान) का क्रम बतलाता है । छान्दोग्योपनिषद् और इस वेद मंत्रमें वर्णित

"देवयान" का क्रम प्रायः मिलते जुलते हैं; बहुत थोड़ा सा अन्तर है, जिससे किसी मौलिक सिद्धांत में भेद नही आता। दोनों कथनों के तुलनार्थ दोनों के मार्ग का विवरण यहां दिया जाता है —

| उपनिषदानुसार | वेदानुसार |
|---|---|
| १—आर्चिषी दशा | १—सविता |
| २—आन्हिकी दशा | २—अहन्नग्निः |
| ३—पाक्षी दशा | ३—वायु |
| ४—औत्तरायणी दशा [षाण्मासिकी] | ४—आदित्य |
| ५—सांवत्सरी | ५—चन्द्रमा + ऋतु |
| ६—सौरी | ६—मरुतः + बृहस्पति + मित्र |
| ७—चान्द्रमसी | ७—वरुण |
| ८—वैद्युती | ८—इन्द्र |
| ९—ब्रह्मलोक | ९—विश्वेदेवा |

नोट—(१) सविता सूर्य प्रकाश को कहते हैं, यही भाव आर्चिषी दशा का है। (२) अहन्नग्निः अर्थात् अग्नि रूप दिन या दिन रूप अग्नि, किसी प्रकार समझ लिया जावे अग्नि के अर्थ प्रकाश के हैं। भाव अहन्नग्नि का दिन का प्रकाश है, और यह आन्हिकी अवस्था का पर्य्याय वाची ही है। (३) वायु-तीसरी पाक्षी दशा का भाव यह है कि जिसमें दिन की अपेक्षा प्रकाश अधिक है, वायनीय अवस्था में भी आन्हिकी दशा से अधिक प्रकाश होता है, वायु सखा अग्नि को इसीलिये कहते भी हैं। (४) आदित्य महीने को कहते हैं इसीलिये चौथी षाण्मासिकी दशा की जगह आदित्य का प्रयोग समानार्थक ही समझा जा सकता है। (५) चन्द्रमा के नाम से चन्द्र वर्ष सिद्ध ही है और प्रयोग में भी आता है, इसी लिये चन्द्रमा का साम्वत्सरी

स्थानी होना ठीक ही है। ऋतु वर्ष का भाग होने से वर्षान्तर्गत आ जाते हैं, इसलिये चन्द्रमा + ऋतु दोनों ५ वीं सांवत्सरी के लिये वेद में प्रयुक्त हैं। (६) मित्रः सूर्य को कहते हैं, बृहस्पति नाम सूत्रात्मा वायु का है और मरुत भी वायु को कहते हैं-इस लिये बृहस्पति और मरुत दोनों सूर्य से सम्बन्धित वायु होने से सूर्य के अन्तर्गत ही है। इसीलिये वेद में "मित्र + बृहस्पति + मरुत" ये तीनों शब्द छटी सौरी दशा के लिये आये हैं। (७) वरुण जल वाची होने से चन्द्रमा से सम्बन्धित इस लिये सातवीं चान्द्रमसी दशा के लिये वेद में वरुण शब्द प्रयुक्त है। (८) इन्द्र बिजली का नाम प्रसिद्ध ही है, इस लिये आठवें वैद्युती अवस्था के लिये वेद मंत्र में शब्द का आना उचित ही था (९) "विश्वेदेवा" समस्त दिव्य गुणों को कहते हैं और ये दिव्य (ऐश्वर्य) गुण जीवात्मा में शरीरों के समस्त बन्धनों से मुक्त होने ही पर आते हैं, इसलिये नवीं और अन्तिम दशा ब्रम्हलोक के लिये वेद में "विश्वेदेवा" शब्द प्रयुक्त हुये हैं। इस प्रकार देख लिया गया कि तीसरी गति प्राप्त "देवयान" के यात्री जिन आठ दशाओं में होकर अपने निर्दिष्ट स्थान ब्रम्ह लोक में पहुँचते हैं। वेद में उन्हीं आठ दशाओं का वर्णन ग्यारह शब्दों में किया गया है जैसा कि ऊपर कहा गया। उपनिषद् का अन्तिम ध्येय ब्रम्हलोक जो ९ की संख्या पर आया है वही ध्येय वेद में बारहवीं संख्या पर है दोनों के भावों में कुछ भी अन्तर नहीं है।

---

**आत्मवेत्ता**—यह कहा जा चुका है कि पहली गति प्राप्त प्राणी मरने के बाद तत्काल जन्म ले लेते हैं और यही बात ठीक है। १२ दिन के बाद जन्म लेने की बात ठीक नहीं है

**सत्यवादी**—क्या "देवयान" का कुछ सम्बन्ध सप्त लोकों से है ? या "इनसे कोई स्वतन्त्र मार्ग है ?

**आत्मवेत्ता**—सप्त लोकों में से ६ लोक तो स्थानपरक हैं, परन्तु "देवयान" के प्रथम की ८ संख्यायें केवल अवस्था-सूचक हैं। सात लोकों में से अन्तिम ब्रम्ह लोक, जो सप्त व्याहृतियों में "सत्यम् नाम से है, वही है जो "देवयान" का निर्दिष्ट स्थान है और जिसका ब्रह्म लोक ही नाम उपनिषदों में भी दिया गया है।

**सत्यव्रत**—पहले यह बात कही गई है कि आत्मा का ब्रह्म लोक वास (मुक्ति) सदा के लिये नहीं है किन्तु एक परान्त काल तक के लिये है, तो फिर जीव वहां से लौट कर किस प्रकार जन्म लेते हैं ? क्योंकि जन्म लेने के लिये तो वासना का होना ज़रूरी है और मुक्त जीव के साथ वासना के होने की तो कथा ही क्या, वासना के रहने का स्थान चित्त भी नहीं होता ?

**आत्मवेत्ता**—यह बात ठीक है, गर्भ का दुःख भोग सकाम कर्म जन्य वासना का परिणाम है और मुक्ति में अंतःकरण नहीं रखते, इस लिए वासना तो फिर उनके साथ हो ही नहीं सकती, इसलिये मुक्त जीव मैथुनी सृष्टि में जन्म लेते किन्तु उनकी उत्पत्ति जगत् के प्रारम्भ में अमैथुनी सृष्टि द्वारा होती है. जिसका वर्णन अगले संघ में किया जायगा। अब संघ का समय समाप्त हो चुका है।

"पांचवां परिच्छेद"

"सातवां संघ"

# ❀ "अमैथुनि सृष्टि का व्याख्यान" ❀

❀ "संघ का प्रारम्भ" ❀

संघ संगठित हो रहा था, इसी बीच में तपोवन की अलौकिक छटा, सुन्दर सुहावने दृश्य और शान्तिप्रद शीतलवायु प्रवाह ने एक भक्त के हृदय को मग्न कर दिया। चन्द्रमा ने स्वच्छ नीले गगन मण्डल में प्रकाशित हो अपनी उज्ज्वल आभा का विस्तार करके उस भक्त के हृदय में उत्पन्न भक्ति प्रवाह को और भी वेग से प्रवाहित कर दिया और भक्त बेसुध-सा होकर प्रभु के यशगान में मग्न होगया:—

भ्रमर वर गुञ्ज मधुर हरि नाम।
शान्ति पुञ्ज, भव भ्रान्ति भञ्ज कर, मोहन, मञ्जु मादम।
भ्रमर वर गुञ्ज मधुर हरि नाम॥
सुभग, सुबोल, सुगेय, सुगोचर, अमल, अमोल, ललाम।
सुखद, सुबोध, सुबुद्धि, प्रमादित, ऋद्धि, सिद्धि, ध्रुव धाम॥
भ्रमर वर गुञ्ज मधुर हरि नाम॥
सजग प्रेममय, निजजनानन्द, अनुमेय गुणधाम।
दुरित दोष दुर्वृत्ति, दुराग्रह, द्विविधा, द्वन्द्व विराम॥
भ्रमर वर गुञ्ज मधुर हरि नाम॥

भक्त का भावनापूर्ण गान सुन कर संघ में उपस्थित नर-नारी प्रफुल्लित हो उठे और सभीके हृदयों में, क्षणिक ही क्यों न हो, प्रभु के प्रेम और भक्ति के भाव जागृति हो गये। जब संघ में इस प्रकार भक्ति का वायु प्रवाहित हो रहा था, इसी बीच में सब का ध्यान आत्मवेत्ता ऋषि को आता देख कर

उस तरफ हो गया। ऋषि संघ द्वारा प्रदानित सम्मान पूर्वक व्यास गद्दी पर आसीन हुए और नर-नारियों को कथामृत-पान का इच्छुक देख कर अपना व्याख्यान प्रारम्भ किया।

"अमैथुनि सृष्टि"

**आत्मवेत्ता**—जगत् की रचना ज्ञान पूर्वक है। जगत् के प्रारम्भ में जो मनुष्य और पशु पक्षी उत्पन्न होते हैं, उनकी उत्पत्ति का क्रम और है और उसी क्रम का नाम अमैथुनि सृष्टि की उत्पत्ति है। संसार की पहली नस्ल सदैव अमैथुनि होती है और उसके बाद की उत्पत्ति का नाम मैथुनि सृष्टि है। मैथुनि सृष्टि वह है—जो माता और पिता के संयोग से उत्पन्न होतीहै और अमैथुनि सृष्टि वह है जो बिना माता पिता के संयोग के उत्पन्न होती है। वह किस प्रकार उत्पन्न होती है, उसका क्रम क्या है, उसी का आज व्याख्यान करना है।

प्राणियों की उत्पत्ति चार प्रकार से

समस्त प्राणी जो जगत् में उत्पन्न होते हैं उनकी उत्पत्ति चार प्रकार से होती है और इसी उत्पत्ति के क्रम से उनके नाम "जरायुज" जो झिल्ली से, "अंडज" जो अंडे से "स्वेदज" जो पसीने आदि से और "उद्भिज" जो पृथ्वी फाड़ कर उत्पन्न होते हैं। इन में से अन्तिम दो की तो सदैव अमैथुन सृष्टि होती है और प्रथम दो की अमैथुन और मैथुन दोनों प्रकार की सृष्टि हुआ करती है। अमैथुनि सृष्टि का क्रम इस प्रकार है:—

अमैथुन सृष्टि का क्रम

स्थूल जगत् की उत्पत्ति का सूत्रपात आकाश ( Ether ) से होता है। उसके बाद क्रम से वायु, अग्नि और पृथ्वी उत्पन्न होते हैं—पृथ्वी से औषधि, औषधि से अन्न, अन्न से वीर्य और वीर्य से पुरुष उत्पन्न होता है*। यहां वीर्य से तात्पर्य्य

रज और वीर्य दोनों से है, अर्थात् दोनों की उत्पत्ति अन्न से होती है। प्राणी चाहे अमैथुनि सृष्टि हो, चाहे मैथुनि, दोनों में रज और वीर्य के मेल से ही उत्पन्न हुआ करता है। मैथुनि सृष्टि में रज और वीर्य के मिलने और गर्भ की स्थापना का स्थान माता का पेट होता है, परन्तु अमैथुनि सृष्टि में इस मेल की जगह माता के पेट से बाहर होती है। प्राणी शास्त्र के

[*] देखें तैत्तिरीयोपनिषद् ब्रह्मानन्द वल्ली का प्रथम अनुवाक।

विद्वान् बतलाते हैं कि अब भी ऐसे जन्तु पाये जाते हैं जिनके रज और वीर्य माता के पेट से बाहर ही मिलते हैं और उन्हीं से बच्चे उत्पन्न हो जाते हैं, उनके कुछेक उदाहरण नीचे दिये जाते हैं:—

※ "ऐसे जन्तुओं के उदाहरण जिनमें रज वीर्य्यका मेल बाहर होता है" ※

( १ ) समुद्रों में एक प्रकार की मछली होती हैं, जिनकी मादा मछलियों में नियत ऋतु में बहु संख्या में रज कण (Ova) प्रकट हो जाते हैं और इसी प्रकार नर मछली के अंडकोषों में जो पेट के नीचे ( Within the abdominal cavity ) होते हैं वीर्य कण ( Zoosperms ) जब मादा मछली किसी जगह अंडे देने के लिये रज कणों को जो हजारों की संख्या में होते हैं, जल की तह में जहां रेतीली अथवा पथरीली भूमि होती है, गिराती है तो तत्काल नर मछली वहीं पहुंच कर उन्हीं रजकणों पर वीर्य कणों को छोड़ देता है, जिससे पेट के बाहर ही गर्भ की स्थापना होकर अंडे बनने का कार्य्य प्रारम्भ हो जाता है।

( २ ) दूसरा उदाहरण एक प्रकार के मेंढकों का है, जो इसी प्रकार रज और वीर्य बाहर छोड़ते हैं। बाहर वीर्य कण छोड़ते समय नर मेंढक मादा मेंढक की पीठ पर इसप्रकार बैठ जाता है, जिससे मादा के छोड़ते हुये रज कणों पर वीर्य कण

गिरते जावें और इस प्रकार से इनके भी पेट से बाहर ही अंडे बना करते हैं। जिन मेंढकों के अंडे मादा के पेट में बनते हैं, उनके लिये, प्राणी शास्त्र के विद्वानों का कथन है कि वह प्रणाली अभी तक समझी नहीं गई है, कि किस प्रकार मादा के पेट में अंडे बनने के कार्य्यार्थ, बिना जुफती के, वीर्य्य कण पहुँच जाते हैं।

( ३ ) एक प्रकार का कीट जिसे "टेपवर्म" (Tape-worm) कहते हैं और जो मनुष्यों के भीतर पाचन क्रिया की नाली ( Hu mandigestive canal ) में पाया जाता है, बीस हज़ार अंडे एक साथ देता है। एक अंडे में से जब कीट निकलता है तो उसका एक मात्र सिर हुकों के साथ जुड़ा हुआ होता है (It consistssimply a head with hooks ) उन हुकों के द्वारा वह आँतों की श्लैष्मिक कला ( Mucuons memdrane of the intenstines ) से जुट जाता है और उसी शिर से शरीर विकसित होता है, जो शीघ्र ही अनेक भागों ( Segments ) में विभक्त हो जाता है और वे क्रमशः संख्या और और आकार में बढ़ते जाते हैं। प्रत्येक भाग में पुरुष स्त्री के उत्पादक अंग ( Sexnal orgons ) होते हैं—जिनसे स्वमेव बिना किसी बाह्य सहायता के, गर्भ की स्थापना होती है और कुछ काल के बाद पुराने भाग ( segments )पृथक् पृथक् होकर स्वतन्त्र कीड़ हो जाते हैं।

( ४ ) कुछेक मक्खियों में गर्भ—स्थापन-कार्य ( sexual function ) प्राण के द्वारा पूरे होते हैं।

( ५ ) कुछेक ख़ास तरह की चींटियां गर्भ स्थापना के समय कतिपय नर चींटियों से गर्भित होती हैं, नर चींटी तत्काल मर जाता है, मादा चींटी प्रत्येक नर के वीर्य कणों ( sperm )

को सुरक्षित रखती है और फिर बिना किसी नर चींटी से मिलने के, कम से कम ११ वर्ष तक बराबर एक के बाद दूसरा अण्डा देती रहती है।

इन उदाहरणों से यह बात अच्छी तरह समझी जा सकती है कि यह असम्भव नहीं है कि रज और वीर्य का सम्मेलन माता के पेट से बाहर हो और उससे प्राणी की उत्पत्ति हो सके इसी मर्यादा के अनुसार अमैथुनि सृष्टि में रज और वीर्य का मेल माता के पेट से बाहर होकर एक झिल्ली[1] में सुरक्षित बढ़ता रहता है और जब प्राणी इस बाह्य गर्भ में इतना बड़ा हो जाता है कि अपनी रक्षा आप कर सके तब उस झिल्ली के फट जाने से प्राणी उत्पन्न हो जाते हैं, इसी का नाम "अमैथुन सृष्टि द्वारा प्राणियों का युवावस्था में उत्पन्न होना है"।

एक कीट का उदाहरण

अमैथुन सृष्टि का कार्य्य अच्छी तरह समझा जा सके कि किस प्रकार बिना प्राणियों के यत्न के रज और वीर्य का स्वयमेव सम्मेलन तथा प्राणी के पुष्ट और स्वयं कार्य करनेके योग्य होने पर झिल्लीका फट जाना आदि कार्य अलौकिक रीतिसे हो जाया करते हैं इसके लिये एक उदाहरण दिया जाता है:—

सुदर्शन नाम की औषधि को प्रायः बहुत लोग जानते हैं। कानों के रोग की चिकित्सार्थ इसका अर्क कानों में डाला जाया करता है। जब इस औषधि के पत्तों में कीड़े लगने वाले होते हैं तभी इसको ध्यान पूर्वक देखना चाहिये-ऐसा देखने से प्रगट होगा कि एक काले रंग की कोई वस्तु सुदर्शन के पत्ते पर कहीं से आकर पड़ती है, जो उस पत्ते को पकड़ लेती है। यह

---

(१) संस्कृत में इस झिल्ली को "उल्व" या "जरायु" कहते हैं और इसी जरायु द्वारा उत्पन्न होने से मनुष्यादि प्राणी जरायुज कहलाते हैं।

वस्तु कहां से किस प्रकार आ जाती है, यह अभी तक ज्ञात नहीं हो सका। दो एक दिन वह वस्तु पत्ते पर बाहर रहती है। उसके बाद, किसी अज्ञात विधि से वह पत्ते के बीच अर्थात् पत्ते की झिल्ली और दल के बीच आ जाती है। उस समय तक स्पष्टतया मालूम होता रहता है कि वही काली वस्तु जो पहले पत्ते के ऊपर थी अब पत्तेकी दोनों पतली और मोटी तहों के बीच में आ गई है। कुछ दिनों के बाद वह इस प्रकार से पत्ते के बीच में आ जाती है कि अब वह बाहर से दिखाई तो देती नहीं परन्तु यह साफ मालूम पड़ता है—कि पत्ते के बीच में कोई वस्तु मौजूद है। अब क्रमशः पत्ते के भीतर यह वस्तु लम्बाई में बढ़ती जाती है और लगभग दो इञ्च के लंबी हो जाती है। इसके बाद कुछ कार्य भीतर ही भीतर होता है और अन्त में कई दिन के बाद वह पत्ता फट जाता है और उसमें से हरे रंग का एक लम्बा और गोल कीड़ा, जिसकी लम्बाई में दो सुनहरी रेखायें होती हैं, निकल आता है। इन सुनहरी रेखाओं (Segments) से कीड़े की लम्बाई तीन बराबर के भागों में विभक्त हो जाती है। यह कीड़ा अब अच्छी तरह सुदर्शन की पत्तियां खा कर अपने को जीवित रखता, परन्तु पौदे को नष्ट कर देता है।

* "एक और परीक्षण" *

अब इसी कीड़े को एक बक्स में, जिसके ऊपर शीशा लगा था, रक्खा गया और उसके खाने के लिए सुदर्शन की पत्तियां रख दी गई। कई परिवर्त्तनों के बाद कुछ दिन गुज़रने पर उस कीड़े के तीनों भाग पृथक् पृथक् तीन तितलियों की शक्ल में हो जाते हैं। ऐसा होने पर जब बक्स खोला गया तो वह तितलियां बहुत सफाई से बक्स खुलते ही, उड़ गई। यह परीक्षण जिसे जो कोई भी चाहे कर सकता है, अमैथुनि सृष्टि

की अनेक अलौकिक बातों पर प्रकाश डालता है कि—किस प्रकार वह सब कार्य्य प्राकृतिक नियमों द्वारा हो जाते हैं। यह अमैथुनि और मैथुनि सृष्टि का क्रम, ठीक वैज्ञानिक और उसी प्रकार से है। जैसे खिलौने बनाने वाले, पहले एक सांचा बना लेते हैं और उसके बाद उसी सांचे से अनेक खिलौने ढाल लिया करते हैं। अमैथुनि सृष्टिका प्रत्येक योनि साँचे के सदृश है और उसके बाद मैथुनि सृष्टि, उसी बने हुए सांचों से खिलौने की भांति हैः——

* ( 'सांचे का उदाहरण' ) *

इस प्रकार देख लिया गया है कि मुक्त जीव जो दुनियां में लौट कर उत्पन्न होते हैं, उनको माता के गर्भ में आकर गर्भ का कष्ट नहीं भोगना पड़ता, परन्तु उसके बाद माता के गर्भ द्वारा उत्पत्ति के लिए वासना की अपेक्षा होती है। अमैथुनि सृष्टि में उत्पन्न होने के लिए वासना की कुछ भी आवश्यकता नहीं होती।

**सत्यशील**—मुक्ति की अवधि का प्रारम्भ तो उसी समय से होता होगा, जब से किसी की मुक्ति होती है। फिर कैसे आवश्यक है कि मुक्त जीव का जन्म सृष्टि के प्रारम्भ ही में हो? यदि मुक्ति समय बीच में सृष्टि के समाप्त होगा तो उसे उसी समय जन्म भी लेना पड़ेगा।

**आत्मवेत्ता**—मुक्ति की अवधि अहोरात्र (सृष्टि और महाप्रलय) सङ्ख्याओं के हिसाब से नियत है, जिस अहो-रात्र में मुक्ति होती है, चाहे वह किसी समय क्यों न हो, वह अहोरात्र की एक संख्या मानी जाती है। ऐसी अवस्थामें सृष्टि के बीच में कभी मुक्ति की अवधि समाप्त नहीं हो सकती।

" छठा परिच्छेद "

# ❀ मुक्ति का आनन्द ❀

❀ "आनन्द के भोग का प्रकार" ❀

**सूक्ष्मदर्शी**--मुक्त में जीव किस प्रकार आनन्द का उपभोग करते हैं।

**आत्मवेत्ता**--जगत् में मुक्ति के आनन्द का उदाहरण दिये जाने योग्य वस्तु "सुषुप्ति" अवस्था है। "सुषुप्ति" में जिस प्रकार मनुष्य शारीरिक बन्धनों से स्वतन्त्र-सा होता है और एक अकथनीय प्रसन्नता का अनुभव, बिना इन्द्रियों से काम लिए आत्मा से किया करता है, उसी प्रकार का परन्तु उस से उच्च कोटि का आनन्द उस के आत्मानुभव में उस समय आया करता है, जब वह मोक्ष प्राप्त कर लिया करता है "वह मुक्त जीव जिस२ प्रदेश या वस्तु या और भी जिस प्रकार की कामना किया करता है, वे सब उसके सङ्कल्प ही से उसे प्राप्त हो जाते हैं। वह यदि कामना करता है कि "पितृ लोक" को प्राप्त करे, तो संकल्पमात्र ही से उसे "पितृ लोक" प्राप्त होता है। वह यदि कामना करे कि "मातृ लोक", "भ्रातृ लोक", "स्वसृ लोक" या "सखि (मित्र) लोक" को प्राप्त करे, तो संकल्प मात्र ही से ये सब उसे प्राप्त हो जाते हैं। वे यदि गन्ध माला, अन्नपान, गति वादित्र आदि वस्तुओं के कामनावान् होते हैं, तो सङ्कल्प करने ही से उन्हें ये सब प्राप्त हो जाते हैं।

इन अन्नादि वस्तुओं की, क्या उस मुक्त जीव को, आवश्यकता होती है, ऐसी बात नहीं है। यह वर्णन केवल जीव के सामर्थ्य कथन के अभिप्राय से है अर्थात् मुक्त जीव स्वेच्छाचारी होता है, वह जीव की सीमा में रहते हुए, जो चाहे कर सकता है, परन्तु इस प्रकार कार्य्य वह करता नहीं है, क्योंकि इनसे उसका कोई प्रयोजन नहीं रहता। यहां प्रश्नोत्तर उद्धृत किया जाता है, उससे इस पर अच्छा प्रकाश पड़ेगा।

---

(१)—पितृ, मातृ, भ्रातृ आदि लोकों की कामना का भाव यह नहीं है कि यह कि वह संसार में जिन माता-पिता आदि को अपना जन्मदाता या सम्बन्धी समझता था, उन्हें प्राप्त करे क्योंकि वह अपने (ममता) का भाव तो अब उसके पास ही नहीं है, बल्कि यों समझना चाहिए कि जब तक इस भावको नष्ट न कर देवे, तब तक कोई मुक्तिही नहीं प्राप्त कर सकता। इन लोकों की प्राप्ति का भाव विश्व पितृ भाव (General father hood) विश्व मातृ भाव (General mother hood) विश्व भ्रातृ भाव (General drother hood) आदि से है।

देखो छन्दोपनिषद् प्रपाठक ८ खण्ड २

३ बृहदारण्यकोपनिषद् अ० ४ ब्राह्मण ३ कण्डिका १६ तथा २४ से ३१ तक।

---

* "एक प्रश्नोत्तर" *

**जनक**—(याज्ञवल्क्य से) आप मुझे मोक्ष के सम्बन्ध में उपदेश देवें।

**याज्ञवल्क्य**—(अनेक शिक्षायें देने के बाद मुक्त जीव

का कथन करते हैं )—मुक्त जीव, मुक्तावस्था में, न देखता, न सूंघता, न चखता, न बोलता, न सुनता, न मनन करता, न स्पर्श करता, न ( इन्द्रियों द्वारा ) कुछ जानता है । ये सब इसलिये नहीं कि मुक्त जीव में ये शक्तियां या सामर्थ्य नहीं उसमें यह सामर्थ्य सदा बना रहता है, क्योंकि जीव का सामर्थ्य नित्य और अविनाशी है, किंतु वह जो देखना, सूंघता चखता इत्यादि नहीं है, उसका कारण यह है कि मुक्ति में जीव को और इस प्रकार के अनेक प्रकार के सामर्थ्य प्राप्त रहते हैं जिनसे उसमें यह योग्यता होती है, कि वह किसी वस्तु को अपनेसे भिन्न अर्थात् अप्राप्त नहीं समझता जहाँ अपने से भिन्न ( अप्राप्त ) वस्तुयें हो, वहां अन्य अन्य को देखे, अन्य अन्य को सूंघे, अन्य अन्य का स्वाद लेवे, अन्य अन्य से सुने, अन्य अन्य का मनन करे, अन्य अन्य को छूवे, अन्य अन्यको जाने ।

**आत्मवेत्ता**—याज्ञवल्क्य के उत्तर से स्पष्ट है कि जीव को मुक्ति में जीव के सभी सम्भव सामर्थ्य प्राप्त रहते हैं; परन्तु वह उन्हें इस प्रकार के कार्यों में व्यय नहीं करता, क्योंकि उसे इन सभी से बढ़ कर उच्च कोटि का आनन्द प्राप्त रहता है, फिर वह इन तुच्छ विषयों की ओर कब ध्यान दे सकता है ।

## ॐ आनन्द मीमांसा ॐ

**प्रेमरस**—मुक्तिका आनन्द उच्च कोटि बतलाया जाता है । क्या आप कृपा करके कुछ ऐसा उपदेश करेंगे. जिससे उसकी उच्चता का कुछ अनुमान किया जा सके ?

**आत्मवेत्ता**—शास्त्रकारों ने मुक्ति के आनन्द के संबंध में कुछ प्रकाश डाला है, उसका संक्षिप्त विवर इस प्रकार है:—

## तैत्तिरीयोपनिषद् शतपथ ब्राह्मण के वृहदारण्यकोपनिषद् अनुसार (ब्रह्मानन्द अनुसार (देखो (काण्वशाखा) के वल्ली अनुवाक् ८) १४।७।१।३५) अनुसार (देखो ४।३।३।२)

| | | |
|---|---|---|
| (१) मनुष्यों के १०० आनन्द मनुष्य गंधर्व के एक आनन्द के समान | मनुष्यों के १०० आनन्द = पितर जित लोक का आनन्द | मनुष्यों के १०० आनंद = पितरजित लोक के एक आनन्द के |
| (२) मनुष्य गन्धर्वों के १०० आनन्द = देव गन्धर्व का एक आनन्द | —— | —— |
| (३) देव गन्धर्वों के १०० आनन्द = पितर चिर लोक का एक आनन्द | —— | —— |
| (४) पितरों के १०० आनन्द = आजानज देव का एक आनन्द | पितरजित लोक के १०० आनन्द = कर्म देव के एक आनन्द के | पितरजित लोक के १०० आनन्द = गंधर्व के एक आनन्द के |
| (५) अजानज देवों के १०० आनन्द कर्म देवों के एक आनन्द के | — | गन्धर्वों के १०० आनन्द = कर्मदेव के एक आनन्द के |
| (६) कर्म देवों के १०० आनन्द = देवों | कर्म देवों के १०० आनन्द = देवों के १ | कर्म देवों के १०० आनन्द = आजानज |

| | | |
|---|---|---|
| के एक आनन्द के | आनन्द के | देव १ आनन्द के |
| (७) देवों के १०० आनन्द = इन्द्र का १ आनन्द | देवों के १०० आनन्द = गन्धर्वो के एक आनन्द के | — |
| (८) इन्द्र के १०० आनन्द = बृहस्पति का एक आनन्द | — | — |
| (९) बृहस्पति के १०० आनन्द = प्रजापति का आनन्द | गन्धर्वों के १०० आनन्द = प्रजापति के १ आनन्द के | आजानज देवों के १०० आनन्द = प्रजापति के १ आनन्द के |
| (१०) प्रजापति के १०० आनन्द = ब्रह्म का १ आनन्द | प्रजापति के १०० आनन्द = ब्रह्म के एक आनन्द के | प्रजापति के १०० आनन्द = ब्रह्म का १ आनन्द |

इसविवरण में आये हुए आनन्द भोक्ताओं को ठीकठीकसमझा जा सके, इस लिये उनका कुछ विवरण यहां दिया जाता है:-

(१) "मनुष्य"—जो व्यक्ति युवा, सच्चरित्र, वेदज्ञ, दृढांग शासक और बलवान् हो और जिसके अधीन धन धान्य से पूर्ण पृथ्वी भी हो, वह "आदर्श मनुष्य" समझे जाने के योग्य होता है, ऐसे व्यक्ति को जो सुख प्राप्त होता है, उन सब सुखों की मात्रा का नाम "एक आनन्द" है।

(२) "मनुष्य गन्धर्व"—मनुष्य के साथ गन्धर्व* विशेषण जोड़ने का भाव यह है कि मनुष्यत्व के सं०१ में वर्णित आदर्श की पूर्ती के साथ मनुष्य में यह योग्यता और भी हो कि सामगान के द्वारा ईश्वरोपासना में मग्न रहता हो

(३) "देव गन्धर्व"—मनुष्यों के तीन भेद होते हैं:-निकृष्ट मध्यम और उत्कृष्ट। उत्कृष्ट मनुष्य वे होते हैं, जिन्होंने योगा-

भ्यास द्वारा दिव्य गुणों को प्राप्त किया हो। ऐसे ही पुरुषों का नाम 'देव' होता है। "मनुष्य" शब्द साधारणतया मध्यम श्रेणी के पुरुषों के लिये प्रयुक्त होता है। निकृष्ट पुरुष असुर, पिशाच और दस्यु आदि शब्दों का वाच्य होता है। "देव गन्धर्व" का भाव "उत्कृष्ट मनुष्य गन्धर्व" है।

(४) "चिर लोक पितर"—पितर (पितृ) शब्द के अर्थ रक्षक के हैं। जो लोग बेद विद्या, अपने परिवार, अपने देश और जाति की रक्षा में सदैव तत्पर रहते थे, उनका नाम बैदिक

---

* कहीं कहीं किसी लेखक ने गन्धर्वों का स्थान ( गन्धर्व लोक ) आकाश को लिखा है। प्रथम तो सभी प्राणी आकाश ही में रहते हैं; पृथ्वी भी, जिस पर मनुष्य रहते हैं, आकाश ही में गतिमान् है। इस के अतिरिक्त गन्धर्व नाम सूर्य्य की किरणों का भी है और गन्धर्वों के आकाश में रहने का भाव यह है कि सूर्य्य की किरणें आकश में रहती हैं।

---

काल में "पितर" होता था। माता पिता के सिवा अन्य पुरुषों के लिये यह शब्द पदवी के तौर पर प्रयुक्त होता था। चिरलोक का विशेषण इस लिये लगाया गया है, कि चिरकाल तक पितृत्व की प्राप्ति समझी जावे। मृत्यु के बाद दूसरी गति प्राप्त करने वाले प्राणियों का नाम भी ' पितर" ही होता है।

**वीरहरी**—पितरों के देव गन्धर्वों से विशेषता क्यों दी गई है?

**आत्मवेत्ता**—इसका कारण यह है, कि मनुष्य गन्धर्व और देव गन्धर्व सब कुछ अपने लिये ही करते हैं, परन्तु पितर अन्यों की रक्षा और सेवा करते हैं। जिसका नाम परोपकार

है, इसी लिये उनका दरजा उन व्यक्तियों से, जो केवल अपने लिये ही जाते हैं, उंचा ठहराया गया है।

(५) आजानज देव—आजानज नाम "देव लोक" अर्थात् ऐसे स्थानों का है, जहां देवों ( उत्कृष्ट मनुष्यों ) का निवास हो, ऐसे स्थानों से उत्पन्न होने वाले व्यक्ति "आजानज" कहलाते हैं। श्रेष्ठ पुरुषों, श्रेष्ठ परिवार आदि से उत्पन्न होना भी श्रेष्ठ कर्मों का जो फल होता है, इसलिये ऐसे पुरुष भी "देव कोटि" में ही रक्खे जाते हैं।

**आनन्दपाल**—यदि "आजानज" कहलाने वाले व्यक्ति अपने अनुरूप कर्म न करें, तो क्या वे तब भी "देव" ही समझे जावेंगे ?

**आत्मवेत्त**—जिस व्यक्ति के उत्तम संस्कार हों और पैदा भी वह देवों के मध्य में हुआ हो तो बहुत कम सम्भावना है कि उस के कर्म उस के अनुरूप न हों, क्योंकि उत्तम संस्कार उक्त प्राणी कुसंगति में पड़ कर ही बिगड़ा करते हैं, परन्तु कल्पना के तौर पर यदि मान लिया जावे कि उसके कर्म उस के अनुरूप न हों, तो वह "आजानज" देव कहला सकेगा। यह प्रकरण तो आनन्द की गणना का है ! आनन्द की गणना में बुरे पुरुषों का समावेश असम्भव है।

(६) "कर्म देव"—जो अपने कर्मों से "देवत्व" प्राप्त करते हैं, उनको "कर्म देव" कहते हैं।

(७) "देव"—दिव्य गुण युक्त।

(८) "इन्द्र"—देवों अगुवा या नेता।

(९) "बृहस्पति"—देवों का उपदेष्टा या शिक्षक।

(१०) "प्रजापति"—देवों का सम्राट् ( चक्रवर्ती राजा )।

इस विवरण से स्पष्ट है कि जगत् में सब से ऊंचा आसन प्रजापति का है। और प्रजापति को जो सुख प्राप्त है, उन समस्त सुखों को प्रजापति का एक आनन्द कहते हैं। ऐसे आनन्द का सौ गुणा किया जावे वह ब्रह्म के एक आनन्द के तुल्य होगा। इस प्रकार के असीम आनन्द ब्रह्म को प्राप्त हैं और उन्हीं में से कुछेक आनन्द मुक्त जीव प्राप्त कर लेता है।

**आनन्दानन्द**—मुक्त जीव के आनन्द का, जो उपर्योक्त विवरण है:क्या वह विवरण प्रत्येक आनन्दों की नाप तौल कर दिया गया है ?

**आत्मवेता**—यह विवरण आनुमानिक और केवल मुक्ति के आनन्द की अद्वितीयता दिखलाने के वास्ते दिया गया है और विवरण से यह उद्देश्य अति उत्तमता से पूरा होता है। जगत् में सब से बड़ा सुख प्रजापति का एक आनन्द है और प्रजापति के आनन्द के सौ गुने बराबर जगत् में कोई आनन्द ही नहीं है और यह सौ गुना आनन्द मुक्ति के आनन्द का दिग्दर्शन मात्र है इसलिये मुक्तिके आनन्दकी अद्वितीयता स्पष्ट है:-

* "मुक्ति के आनन्द की विशेषता का कारण" *

**प्रजाबन्धु**--मुक्ति के इस आनन्द की विशेषता का कारण क्या है ?

**आत्मवेत्ता**—इसके दो कारण हैं—( १ ) पहिला और मुख्य कारण तो यह है कि-आत्मा का ॐ पद वाच्य सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म का साक्षात्कार प्राप्त होता है, जो निरावलम्बों का श्रेष्ठ अवलम्ब, निराश्रितों का उत्कृष्ट आश्रय, असहाय और दीनों का बन्धु और सखा, भक्तों का वत्सल है

और जिसकी विलक्षण सत्ता का अनुमान भी नहीं किया जा सकता। क्या यह कम विलक्षणा है कि उसमें, माता का प्रेम, पिता का वात्सल्य: गुरू का स्नेह, सखा का सखित्व, बन्धु का बन्धुत्व, राजा की न्यायप्रियता, सुहृदयों की दयालुता आदि गुण जिनकी कोई संख्या नहीं और जो किसी प्रकार से भी गणना में नहीं आ सकते, एकत्रित हैं।

( २ ) दूसरा कारण यह है कि—प्राणी अपनी अत्यन्त प्रिय वस्तु स्वतन्त्रता का, उस मात्रा में उपभोग करता है, जितनी या जिससे अधिक मात्रा में उसे वह और किसी प्रकार प्राप्त नहीं कर सकता।

उपमन्यु—प्राणी स्वतंत्रता का तो, एक अन्श तक, जीवन काल में शरीर रखते हुये भी उपभोग करता है। तो इस और मोक्ष की स्वतन्त्रतामें केवल मात्रा भेद ही कहा जा सकता है।

आत्मवेत्ता—केवल मात्रा भेद नहीं, किन्तु श्रेणी भेद भी है। शरीर रखते हुये प्राणी जिस स्वतंत्रता का उपभोग करता है, वह स्वतंत्रता अर्द्ध बन्दी की स्वतंत्रता के सदृश है मनुष्यंतर योनियां तो केवल भोग योनि होने से बन्दीगृह ( जेलखाने ) के सदृश हैं और उनमें जानेवाला प्राणी तो पूरा पूरा बन्दी होता है। परन्तु मनुष्य योनि में, कर्तव्य और भुक्तव्य उभय योनि होने से, मनुष्य को कर्म करने को स्वतंत्रता प्राप्त होती है, परन्तु फल भोग के समय तो मनुष्य योनि भी जेलखाना ही होती है। इसीलिए मनुष्य योनि में प्राप्त स्वतंत्रता अर्द्ध बन्दी की स्वतन्त्रता कही जाती है। परन्तु मोक्ष में जीव को किसी प्रकार के भी शरीर का, बन्धन नहीं रहता, इसलिये वह स्वतंत्रता का उपभोग करता है। इसीलिए कहा जाता है कि, दोनों प्रकारकी स्वतंत्रताओं में केवल मात्रा

भेद ही नहीं किन्तु श्रेणी का भेद भी है।

❀ संघ का अन्तिम दृश्य ❀

आत्मवेत्ता ऋषि के व्याख्यान और शङ्काओं का समाधान करने के साथ ही सङ्घ का समय भी समाप्त होगया। सङ्घ के समाप्त होने पर श्रोता जन प्रसन्न वदन प्रतीत होते थे। उसमें जो साधारण स्थिति के पुरुष थे, उनको यह विश्वास हो चला था कि यदि योगी नहीं बन सकते और समाधि भी नहीं लगा सकते, तो भी ईश्वर का भरोसा दृढ़ता के साथ पकड़ लेने ही से उनका कल्याण हो सकता है, इसलिए उनके मुखड़े भी प्रफुल्लित थे निदान सङ्घ में उपस्थित नर-नारी प्रसन्न थे और प्रत्येक के हृदय में यह भाव जागृत हो चुका था, कि जिस प्रकार भी हो सके, अपने अपने हृदय को ईश्वर-प्रेम का मंदिर बनाना चाहिए और इस भाव के जागृत होने से उनका दृष्टि-कोण भी बदलने लगा। अब उन्हें जगत् की प्रत्येक वस्तु में प्रभु की प्रतिमा की झलक दिखाई देने लगी थी। सङ्घ के इस दृश्य ने सङ्घमें उपस्थित एक भक्त के हृदयमें निहित प्रेमाग्नि धधका दिया और वह मग्न होकर गाने लगाः——

## ❀ गज़ल ❀

चन्द्र मण्डल में कोई देख ले आभा तेरी। तेज सूरज का नहीं यह भी है छाया तेरी ॥१॥ तेरी महिमा को प्रकट करती है रचना तेरी। देख ले आके जगत में कोई महिमा तेरी ॥२॥ होंठ वे होंठ रहे जिन पै प्रशंसा तेरी। मन वह मन है कि भरी जिसमें हो श्रद्धा तेरी ॥३॥ तेरी तकबीर* की देती है गवाही दुनियां। तेरी हस्ती की शहादत में है रचना तेरी ॥४॥ ज़िक्र सौसन+ की ज़ुबां पर है तेरी रहमत का। सर्प इक पांव से करता है तपस्या तेरी ॥५॥ गोशे नाज़ुक में गुलेतर() के छिपा

भेद तेरा । चश्मे नरगिस[] में निहां सूरते ज़ेबा तेरी ॥६॥ हर तरफ़ खोज में फिरती है तिरे बादे सबा ÷। बुलबुलें बाग़ में करती हैं तमन्ना × तेरी ॥७॥ कामना कोई नहीं जिसकी हो इच्छा बाक़ी। दिल में इक तू है और इक मिलने की आशा तेरी ॥८॥ इक दृष्टि हो इधर भी कि इसी फल के लिये। जप रहा हूं मैं बहुत देर से माला तेरी ॥९॥

---

※ तकबीर = महत्ता, बड़प्पन ।

‡ सोसन एक फूल का नाम है जिसे फ़ारसी कविता मे जुबान से उपमा दी जाया करती है ।

() गुलाब फूल में फ़ारसी भाषा के कवियों ने, कान होने की कल्पना की है ॥ [] नरगिस फूल विशेष का नाम है, जिसके पत्तों से आंख की उपमा दी जाया करती है ॥ ÷ बादे सबा = उत्तम वायु × तमन्ना = इच्छा

---

## ● दूसरी ग़ज़ल ●

मन यदि ठहरा तो चित्त है शान्त ईश्वर प्रेम में। और हृदय बन गया है प्रेम मन्दिर प्रेम में ॥१॥ नम्रता भावों में आई शील आया चित्त में । भर दिया है शान्ति ने मन को ईश्वर प्रेम में ॥२॥ आदमी तो क्या पशु पक्षी भी मोहित होगये। कुछ अजब जादू भरा है चार अक्षर प्रेम में ॥३॥ हम हुए ब्रह्माण्ड के ब्रह्माण्ड अपना होगया। और क्या दरकार है इससे भी बढ़ कर प्रेम में ॥४॥ है यही इच्छा यह है आर्ज़ूये दिल की। मैं देख लूं इकबार तुमको आंख भर कर प्रेम में ॥५॥

सातवां परिच्छेद

"आठवां संघ"

ॐ अवस्थायें ॐ

## ( जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति )

जान्हवी तट पर सुन्दर सुरम्य तपोभूमि में संघ लगा हुआ है, अनेक नर नारी उपदेश ग्रहण करने के लिये एकत्रित हैं और सभी आत्मवेत्ता ऋषि की प्रतिक्षा में हैं। ठीक समय पर ऋषि को आता हुआ देख सभी नर नारी प्रफुल्लित हो गये और सम्मान पूर्वक ऋषि को व्यास गद्दी पर बिठलाया। ऋषि के आतेही संघ में शान्ति का वायु प्रवाहित होने लगा। संघ के नर नारी प्रतीक्षा में थे कि आज क्या उपदेश मिलेगा, कि इसी बीच में संघ की एक देवी नें खड़े होकर इस प्रकार नम्रता से कथन किया:—

**सुभद्रा—सुषुप्ति को मोक्ष का उदाहरण पिछले संघ में बतलाया गया था—** ये अवस्थायें क्या वस्तु हैं? इन में क्या भेद है? किस प्रकार मोक्ष का उदाहरण हैं? और इन अवस्थाओं का सम्बन्ध किस प्रकार लोक और परलोक से है? यह जानने की इच्छा संघ में उपस्थित अधिकतर नर नारियों की है। इसलिये आज इसी का उपदेश हो, तो इच्छा हो

ॐ अवस्थायें तीन हैं ॐ

**आत्मवेत्ता—** बहुत अच्छा! आज अवस्थाओं का ही व्याख्यान होगा। ३ अवस्थायें जगत्प्रसिद्ध हैं। १. ( जागृत ) २. ( स्वप्न ) ३. ( सुषुप्ति ) इनका सम्बन्ध। शरीरों से है।

"जागृत" का सम्बन्ध स्थूल शरीर से है, "स्वप्न" का सूक्ष्म शरीर से और "सुषुप्ति" का कारण शरीर से।

❀ जागृत अवस्था ❀

इनमें से 'जागृत अवस्था" वह है जिसमें स्थूल और सूक्ष्म शरीरों अर्थात् इन्द्रिय और मन दोनों का काम जारी रहता है। मनुष्य इस अवस्था में जगत् से साक्षात् सम्बन्ध रखता है। जगत् में देखने योग्य वस्तुओं को देखता, सुनने योग्य वस्तुओं को सुनता इसी प्रकार प्रत्येक इन्द्रिय के व्योहार को करता हुआ शब्द, स्पर्श, रूप रस और गन्ध को ग्रहण करता रहता है।

"स्वप्नावस्था"

"स्वप्नावस्था" में स्थूल शरीर का कार्य्य बन्द रहता है, केवल सूक्ष्म शरीर काम करता रहता है-अर्थात् इन्द्रिय व्यापार तो बन्द रहता है, परन्तु संकल्प विकल्पात्मक मन अपना काम जारी रखता है। इसी मन के व्योपार को स्वप्न ( Dreams ) कहते हैं।

"स्वप्न क्या है"

**आनन्द प्रिय**—ये "स्वप्न" क्या हैं? क्या नई नई कल्पनायें वस्यमेव मन किया करता है? या पिछले देखे सुने के स्मरण मात्र का नाम "स्वप्न" है?

**आत्मवेत्ता**—एक जगह इस प्रश्न का उत्तर दिया गया है, जो इस प्रकार है:—

"स्वप्नावस्था में मन अपनी महिमा का अनुभव करता है जो देखा हुआ है, उसी को पुनः देखता है, सुने हुए को पुनः सुनता है, भिन्न भिन्न अवस्थाओं और स्थानों में जिन जिन विषयों का अनुभव किया हुआ है, उन्हीं का बार बार अनुभव करता है।"

इतना उत्तर देने के बाद अन्त में कहा गया है "कि दृष्ट अदृष्ट, श्रुत, अश्रुत, अनुभूत अननुभूत, सत्य असत्य सभी को देखता है।"*

**आनन्दघन**—उत्तर के अन्त में तो अदृष्ट, अश्रुत और अनुभूत विषयों के भी देखने, सुनने और अनुभव करने की बात कही गई है।

**आत्मवेत्ता**—यह बात कही जा चुकी है, कि मृत्यु स्थूल शरीर की होती है, सूक्ष्म शरीर आत्मा के साथ मृत्यु के समय स्थूल शरीर से निकल कर दूसरे शरीर में चला जाया करता है। इस प्रकार जन्म जन्मान्तरों की देखी, सुनी और अनुभव की हुई बातें, स्मृति के रूप में सूक्ष्म शरीर के एक अंग "चित्त" में जमा रहती हैं और जिस प्रकार इसी विचलित जन्म की बातें, जो स्मृति रूप में हैं, प्रकरण आने पर स्मृति भंडार से निकल कर ताज़ा हो जाती हैं। इसी प्रकार जन्म जन्मान्तर की बातें भी, प्रकरण आने पर, उसी स्मृति भंडार से निकल आया करती है— इस जन्म में मनुष्य को जो आंख, कान, नाक आदि इन्द्रियां मिली हैं, उन्हीं के द्वारा जिन बातों को देखा और सुना है, उन्हीं को मनुष्य दृष्ट और श्रुत शब्दों में कहा करता है—परन्तु पिछले जन्मों की देखी और सुनी बातें जो उन जन्मों में प्राप्त आंख कानके द्वारा देखी और सुनी गई थी और जो अब स्मृति भंडारमें जमा हैं, इस जन्म प्राप्त आंख और कान अपेक्षा तो अवश्य 'अदृष्ट' और 'अश्रुत' हैं और इसीलिए अब उन्हें मनुष्य अदृष्ट और अश्रुत कहते हैं। परन्तु वास्तव में वे, न अदृष्ट हैं और न अश्रुत और न मनकी कल्पना मात्र ही हैं।

---

* प्रश्नोपनिषद् ४।५।

निष्कर्ष यह है कि स्वप्न में मनुष्य जो कुछ भी देखा सुना या अनुभव किया करता है वे सब उनकी देखी सुनी और अनुभव की हुई बातें ही होती हैं, चाहे वे इस जन्म की देखी सुनी और अनुभव की हुई हों, चाहे पिछले जन्म जन्मान्तरों की—

### ॐ सुषुप्तावस्था ॐ

जब स्थूल, और सूक्ष्म दोनों शरीरों का काम बन्द होता है अर्थात् न इन्द्रिय काम करती हैं और न मन और जब समस्त वे काम जो इरादा करके किए जाते हैं, बन्द रहते हैं, तब उस अवस्था का नाम हुआ करता है और यही वह अवस्था है, जिसमें मनुष्य को पूरा आराम मिला करता है—इसी लिए इस अवस्था को मोक्ष का उदाहरण भी दिया करते हैं—

इन अवस्थाओं के सम्बन्ध में याज्ञवल्क्य और जनक सम्वाद प्रसिद्ध है और इस प्रकार है:—

### याज्ञवल्क्य और जनक सम्वाद

**याज्ञवल्क्य**—जीवात्मा के दो लोक होते हैं (१) इह लोक (२) परलोक परन्तु एक तीसरा लोक और भी होता है और वह है इन दोनों लोक परलोक की सधि अर्थात् "स्वप्न लोक"—जीव इस सन्धि (स्वप्न) लोक से लोक और परलोक दोनों को देखा करता है, पर (इस जन्म से पहिले) लोक में जीव का जैसा जैसा आक्रम+ (आक्रम) होता है, उसी आक्रम के आधार से जीव इस लोक में दुःख और सुख देखा करता है—उस समय (स्वप्नावस्था में) सर्व वासना युक्त इस लोक की एक मात्रा (वासना का एक अंश) को लेकर स्वयं उसे नष्ट करता पुनः स्वयं उसे बनाता अर्थात् अपने प्रकाश और अपनी ही ज्योति से स्वप्नक्रीड़ा का आरम्भ करता है—उस अवस्था में उसके पास न रथ होता है; न उसके घोड़े आदि,

परन्तु वह इनकी ( काल्पनिक ) रचना कर लेता है-उसके पास आनन्द, मोद, प्रमोद भी नहीं होते, परन्तु वह इन्हें भी ( अपने संकल्पों से ) रच लेता है-वह जीव उच्च नीच विविध भावों

*इह लोक का तात्पर्य्य इस जगत् से है, जिस में प्राणी निवास करता है और जिससे जागृतावस्था द्वारा उसका सम्बन्ध बना रहता है। परलोक का अभिप्राय इस जन्म से पहले और पीछे के जन्मों अथवा अवस्थाओं से है।

†आकिम सोढ़ा का कहते है—परलोक के आश्रय से यह मतलब है कि जीव के जैसे ज्ञान, कर्म और वासनायें होती हैं उन्हीं के अनुकूल उसे दुःख सुख भोगना पड़ता है।

को प्राप्त होता हुआ अनेक रूप उत्पन्न कर लिया करता है-कभी स्त्रियों के साथ सुखानुभव करता है, हंसता है, कभी हर तरह के भयों को देखता है—

जनक—इससे आगे की भी अवस्था का उपदेश करें।

याज्ञवल्क्य—जीवात्मा मग्न और भ्रमण करता है, पुण्य और पाप को देखता हुआ आगे के संप्रसाद ( सुषुप्तावस्था ) में पहुंचता है और वहां से "प्रतिन्याय" द्वारा ( जिस मार्ग से गया था, उसी मार्ग से लौटकर प्रतियोनि जिस स्वप्नावस्था से सुषुप्ति में गया था ) उसी स्वप्नावस्था को लौटता और इसी प्रकार स्वप्नावस्था से जागृतावस्था के लिये लौटता है-परन्तु इस स्वस्थान में जो कुछ वह देखता उससे लिप्त नहीं होता।

जनक—इससे आगे सम्यग्ज्ञान के लिये उपदेश देवें।

याज्ञवल्क्य—जिस प्रकार महामत्स्य नदी के सभी एक

किनारेकी ओर जाता कभी दूसरे किनारे की ओर—इसी प्रकार जीव स्वप्न और जागृत अवस्थाओं को प्राप्त होता रहता है जिस प्रकार पक्षी आकाश में इधर उधर उड़ जब थक जाते हैं तब अपने अपने घोंसलों की ओर दौड़ते हैं—इसी प्रकार जागृत और स्वप्न अवस्थाओं के कृत्यों से थका हुआ जीव सुषुप्ति के लिये दौड़ता है और वहां पहुँच कर सुखानुभाव करता है, उस ( सुषुप्ति ) अवस्था में पिता अपिता, माता अमाता, लोक अलोक, देव अदेव, वेद अवेद, स्तेन ( चोर ) अस्तेन, भ्रूणघाती अभ्रूणघाती, श्रमण अश्रमण, तापस अतापस होता है—इस सुषुप्तावस्था में जीव पुण्य और पाप दोनों से असम्बद्ध रहता है और हृदय के समस्त शोक और अशोकों के पार होजाता है

**सुखदेव**—क्या यह ठीक है कि सोते हुये मनुष्य को अचानक न जगावें, क्योंकि कहा जाता है कि, इससे कुछ हानि होती है।

**आत्मवेत्ता**—एक मत यह है कि सोते हुये को सहसा जगानेसे वह स्थान जहां मनुष्यकी इन्द्रियां शक्तियां काम नहीं करतीं, दुश्चिकित्स्य हो जाता है, परन्तु दूसरा मत यह है कि मनुष्य स्वप्न में सिंह आदि उन्हीं वस्तुओंको देखता है जिन्हें जागृता वस्था में देख चुका होता है और इस प्रकार जागृत और स्वप्न में कुछ भेद नहीं है और ऐसी हालत में उसे सहसा जगा देने से कुछ हानि नहीं होती—परन्तु श्रेष्ठता यही है कि घबड़ाहट के साथ सहसा किसी को नहीं जगाना चाहिये।

अवस्थाओं का विवरण जो आत्मवेत्ता ऋषि ने दिया और विशेष कर ज्ञान इस प्रकरण में याज्ञवल्क्य और उनके सम्वाद से हुआ, उससे संघ के सभी नर नारी प्रसन्न थे और अपने

अपने हृदयों में प्रत्येक यही भावना रखता हुआ प्रतीत हो रहा था कि अवस्थाओं के ज्ञान से शिक्षा लेकर यत्नवान्* होना चाहिये कि जागृत अवस्था को इतना श्रेष्ठ बनाया जावे, कि उसमें सुषुप्ति का आनन्द आनेलगे-यही शिक्षाभी अवस्थाओं के वर्णन के अन्तर्गत निहित थी और इसी आशामें प्रायः सभी मग्न हो रहे थे-संघ का कार्य समाप्त हो चुका था, इसलिये आत्म-वेत्ता ऋषि अपने निवास स्थान पर चले गये और प्रत्येक नर नारी गंभीरता का भाव हृदय में रखते, उपदेश की सराहना करते और संघ में आने से अपने जीवन को सफल समझते हुये संघ से अपने अपने स्थानों को चले-संघ से जाने वालों की प्रसन्नता और भी बढ़ गई जब उन्होंने एक प्रेमी के मुख से एक गाना सुना, जिसे वह मग्न हो हो कर गा रहा था।

## भजन

मैं उनके दरस की प्यासी ॥ टेक ॥

जिनका ऋषि मुनि ध्यान धरें नित, योगी योगाभ्यासी।
जिनको कहते अमर अशोकी। आश्रय जिनके सदा त्रिलोकी ॥
जन्म मरण से रहित सदा शिव। काल-मुक्त अविनाशी ॥ मैं उनके० आविष्कर्ता अमर वेद का। लेश न जिसमें भेद छेद का ॥
अचल अमूर्त अलौकिक अनुपम। परिभू घट घट वासी मैं उनके०
अतुल राज्य है जिसका जग पर! सकल सृष्टि है जिसके अन्तर ॥ "अमीचन्द" जिससे होते हैं। रवि शशि अग्नि प्रकाशी॥
मैं उनके० ॥

## दूसरा भजन

मन पछते है अवसर बीते।

---

* बृहदारण्यकोपनिषद् अध्याय ४ ब्राह्मण ३

दुर्लभ देह पाय प्रभु पद भुज करम बचन अस हीने॥ सहस बाहु दस बदन आदि नृप बचे न काल बली ते। हम हम करि धन धाम सँवारे अन्त चले उठ रीते॥ सुत बनितादि जानि स्वारथरत न कर नेह सब ही ते। अंतहु तोहि तजेंगे पामर तू न तजै अबही ते॥ अब नाथहिं अनुराग जागु जड़ त्यागु दुरासा जी ते, बुझै न काम अगिन "तुलसी" कहुं विषय भोग बहु घी ते॥

मन पछतै है अवसर बीते।

सभी लोग गंभीरता के साथ "मन पछतै है अवसर बीते" इस कड़ी को बार बार कहते हुये आगे चले गये।

# तीसरा अध्याय।

"पहिला परिच्छेद"

"नवां संघ"

## रूहों का बुलाना।

प्रारम्भ

संघ का कार्य यद्यपि सन्ध्या काल व्यतीत होने पर प्रारम्भ हुआ करता है, परन्तु जिज्ञासुओं का जमघटा बहुत पहले से ही होने लगता है। अभी सूर्य्य अस्त हुआ है, अभी उसकी अरुण आभा दिखाई ही देती है। सन्ध्या की छाया का धीरे धीरे निर्जन मैदान में उतरना प्रारम्भ ही हुआ है, अभी वह सायंकाल की नीरवता का विशेष सौन्दर्य बढ़ाने भी नहीं पाई है कि जिज्ञासुओं के हृदयों में चिन्ता रजनी घनीभूत हो उठी, कि संघ में चलने का समय आ गया—आज संघ में क्या सुनेंगे, उसीके सम्बन्ध में बहुदूरदर्शिनी, बहु दूरव्यापिनी अनेक

कल्पनाओं से अन्तःकरण परिपूरित हो रहा है—हृदय प्रेम से परिप्लुत है। खिले हुये पंकज पुष्प ने मानो पुनः मुकुलित हो कर कलि का भाव धारण किया हुआ है—भीड़ की भीड़ आत्म-वेत्ता ऋषि के आश्रम की ओर चली आ रही है—अनेक दरिद्र हैं, किन्तु सन्तोषी हैं, अनेक अज्ञानी हैं पर पाप से परांमुख हैं अनेक विपद् ग्रस्त हैं, पर तपस्वियों के समान धीर हैं—सभी यह सोचते हुये कि धर्म पथ सर्वदा निरापद और निष्कंटक है, बढ़े हुये चले आ रहे हैं—देखते देखते ही सब भूमि दर्शकों से परि पूरित हो गई, अब सभी टकटकी लगाये ऋषि के आने की बाट देख रहे हैं ऋषि आकर संघ में उपस्थित हो गये, संघ में आये अनेक नवीन स्त्री, पुरुषों ने ऋषि को देखा कि उन्नत ललाट है, नेत्र समुज्ज्वल आभा से पूरित हैं और चेहरे की आकृत प्रकट कर रही है कि हृदय अलौकिक स्नेह सम्पन्न है-देखते ही हृदय श्रद्धा से भरपूर हो उठा और सभी उत्सुकता से ऋषि के मुह की ओर देखने लगे कि क्या उपदेश करते हैं-इसी बीच में एक जिज्ञासु ने नम्रता से कहाः—

सत्यकेतु—मरने के बाद आपने जिन तीन गतियों का वर्णन किया है, उनमें दो तो दूसरी और तीसरी विशेष समुन्नत प्राणियों से सम्बन्धित हैं—पहली गति में आवश्यक रीति से प्रत्येक कामी पुनर्जन्म लेना पड़ता है, फिर जो कहाँके बुलावेकी चर्चा आजकल देश और विदेश में चल रहीहै, यह क्या बात है?—जब सब प्राणी जन्म ले लिया करते हैं, तब फिर ये कहाँ कहां से और कैसे आना हैं? आज इसी के सम्बन्ध में कुछ उपदेश हो तो अच्छा होगा।

आत्मवेत्ता—बहुत अच्छा।

**बसन्ती देवी**—पुनर्जन्म तो पहली गति प्राप्त प्राणियां केलिये ही आवश्यक बतलाया गया है-फिर यह क्यों सम्भव नहीं कि दूसरी या तीसरी गति प्राप्त प्राणियों की रूहें आतीं और अपना सन्देश देतीं हों।

❀ 'रूहों के बुलाने का सम्बन्ध पहली गति प्राप्त प्राणियों से है' ❀

**सत्यकेतु**—यह नहीं हो सकता— दूसरी और तीसरी गति प्राप्त प्राणी इतने उंचे और समुन्नत होते हैंकि उनसे अपराध होना असम्भव है, परन्तु रूहें जहां रहती हैं, वहां ये अपराध भी करती हैं, दण्ड भी मिलता है इन्हें जेल में भी जाना पड़ता है—सुनो एक रूह ने परलोक के दण्ड विधान की बात इस प्रकार वर्णन की है:—

❀ परलोक में जेल ❀

"मुझको सज़ा मिली— मुझे हथकड़ी नहीं पहनाई गई थी— कारागृहमें अन्धकार रहता है—भोजन देते हैं—गुरु ने मुझको मारा पीटा नहीं, किन्तु दूसरे लोगों ने मारा पीटा-पहरे वाले पुरबिया जाति के थे—शासन दण्ड चमड़े के थे, और बेत की लकड़ी लाल रंग की थी—कारागृह में धर्मशाला के समान तीन मंज़ले मकान हैं। बाहर से वह इतना नायनाह्लादक दिखाई देता है कि जो देखेगा उसको भीतर जाने की इच्छा होगी। वह कई रंग से पुता हुआ है। एक के पीछे एक, इस तरह पांच पहरे हैं, हर एक पहरे पर दो आदमी हैं, अन्दर के और बाहर के पहरे वाले के पास घड़ी रहती है।

**देवप्रिय**—क्या वेस्टेंड वाच कम्पनी की घड़ियां थीं?

नोट—इस प्रश्न पर सब हंस पड़े—और सत्यकेतु ने इस प्रकार फिर वर्णन करना शुरू किया:—

सत्यकेतु—"बिछाने को कम्बल ओढ़ने को चद्दर, बनियाइन, टोपी और खद्दरकी धोती देते हैं, बनियाइन काले रंगकी और टोपी नीले रंग की होती है*। एक दूसरी रूह ने कहा कि "मुझे (जेल में) बन्द हुये तीन माह हो गये हैं"+ एक तीसरी रूह ने कहा कि परलोक में हमको स्वतन्त्रता नहीं रहती, गुरु को प्रसन्न रख कर हमको सब काम करने पड़ते हैं"‡ एक चौथीरूह ने बतलाया कि "हम यहां पर औषधि आदि का सेवन नहीं करते केवल गुरु मन्त्र नहीं व प्रसाद भभूति से रोग मिटाते हैं-भभूति लगा कर मन्त्र पढ़ते हैं। इससे मस्तक शूल आदि जो जो व्यथायें होती हैं वे सब नष्ट हो जाती हैं। अपरिचित आत्मा कभी कभी भविष्य कथन करते हैं, पर उनका यह कथन असत्य होता है" ÷—

तर्कप्रिय क्या योरोपियन लोगों की रूहें भी खद्दर ही की धोती पहनती हैं?

नोट—सब लोग इस प्रश्न पर फिर हंस पड़े और सत्यकेतु ने फिर कहना शुरू किया:—

सत्यकेतु—जब परलोक में रूहें अपराध करती हैं—जेल में जाती हैं, तीन २ मास जेलों में रहती हैं, जब उन्हें वहां स्वतन्त्रता नहीं होती, जब वे वहां बीमार होती हैं, जब वे वहां झूठ बोलती हैं, तो फिर उस परलोक को किस प्रकार द्वितीय तृतीय गति प्राप्त प्राणियों का स्थान कह सकते हैं?

* बा० डी० ऋषि व्रत सुभद्रा ६५, ६६
+बा० डी० ऋषि व्रत सुभद्रा पृष्ठ ६६
‡बा० डी० ऋषि व्रत सुभद्रा पृष्ठ ६९
÷ बा० डी० ऋषि व्रत सुभद्रा पृष्ठ ७३

आत्मवेत्ता—सत्यकेतु का कथन ठीक है—दूसरी और तीसरी गति प्राप्त प्राणियों की रूहों के बुलाने की बात कल्पनातीत है रूहोंके बुलानेके दावेदार पाप पुण्य मिश्रित प्राणियों के रूहों के बुलाने ही का कथन भी करते हैं—एक ऐसे ही रूहें बुलाने के दावेदार का कथन है, "परलोक में नियमोल्लङ्घन के लिए किस तरह की सज़ायें दी जाती हैं। इसका वर्णन कई आत्माओं ने किया है-इस लोक के दुराचारके लिये तथा परलोक में आज्ञा भंग के लिए जो शासन होता है, बहुत सख्त तथा निश्चित है"*—

इस कथन में रूहों की परलोक नाम की बस्ती में ऐसी रूहों का जाना स्वीकार किया गया है, जो दुराचारी थीं, इसलिए रूहों के बुलाने की सम्भावना—विषय पर पहिली गति प्राप्त प्राणियों के साथ ही विचार हो सकता है और इसी पर विचार किया जायगा—यह स्पष्ट है कि पहिली गति प्राप्त प्राणियों के लिए आवागमन अनिवार्य्य बतलाया जा चुका है और रूहों के बुलाने, उनके आने और सन्देश देने की बात विचार कोटि में भी नहीं लाई जा सकती, जब तक यह स्वीकार न कर लिया जाय कि उनके लिए पुनर्जन्म अनिवार्य्य नहीं है।

*** "पुनर्जन्म प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध है" ***

परन्तु पुनर्जन्म का होना अन्य प्रमाणों के सिवा प्रत्यक्ष प्रमाण से भी सिद्ध है-अनेक बालकों ने अपने पूर्व जन्म के हालात बतलायें हैं, जिनकी जांच वैज्ञानिक रीति से की गई और उनका बतलाया हुआ हाल ठीक पाया गया उसके कुछेक उदाहरण यहां दिये जाते हैं।

**पहली घटना**—कुंवर केकई नन्द सहाय B.A.L.L.B वकील बरेली के एक पुत्र है, जिसका नाम जगदीशचन्द्र है और जिसकी आयु ३॥ वर्ष की है, उसने अपने पहले जन्म का हाल इस प्रकार वर्णन किया—उसके पिता का नाम बबुआ पांडे और उसका घर बनारस था—उसने बनारसके मकानका हाल भी बतलाया और ख़ास तौरसे बड़े दरवाजे, बैठक और तहखानेका ज़िक किया, जिसकी एक दीवारमें लोहे की आलमारी लगी थी उसने मकान के सेहन की बात भी बतलाई, जिसमें सायंकाल को बबुआजी बैठा करते थे और जहां अन्यों के साथ वे भंग पिया करते थे, उसने यह भी कहा कि—बबुआ जी स्नान से पहले शरीर पर मिट्टी मला करते थे और एक फिटन और दो मोटरकार उनके थे बबुआ जी के दो लड़के थे और एक स्त्री थी और सब मर गये थे—इस वक्त बबुआ जी अकेले हैं—उसने अपनी मां को चाची कहना बतलाया और कहा कि घर में जब और आदमी आया करते थे, तब वह लम्बा घूंघट काढ़ लिया करती थी, वही रोटी बनाती थी—इन सब बातों की तसदीक़ बनारस के प्रतिष्ठित सज्जनों द्वारा की गई और जगदीश का उसका पिता बनारस ले भी गया, जिसने वहां पहुंच कर वहां के ज़िलाधीश और पुलिस कप्तान तथा अन्य अनेक प्रतिष्ठित व्यक्तियों के सम्मुख अपने पहले घर और बनारस के सम्बन्धियों को पहचान लिया और भी इस घटना की पुष्टि में बनारस की अनेक बातें बतलाईं ।*

**दूसरी घटना**—एक बालक विश्वनाथ का है—यह भी बरेली का है। इसका पहला जन्म पीलीभीत में हुआ था, इसने वहां के सब हालात बतलाये और उनकी भी उपर्युक्त भांति तसदीक हुई । †

**और घटनायें**—(३) हीराकुंवर बरेली-यह पहले जन्म में गोकुल जिला मथुरा में थी और लजवा थी जांच से इसका वर्णित हाल भी सही पाया गया। (४) सुन्दर लाल हीरपुर ज़िला सीतापुर के पहले जन्म के हालात की भी तसदीक कमालपुर से हुई। (५) ब्रज चन्द्रशरण मिरज़ापुर। (६) बजरंग बहादुर बरेली—इनके भी बतलाये हुये हालात तसदीक किए गये और सही पाए गए। ()

इन घटनाओं से स्पष्ट है कि पहली गति सब प्राणियोंकी पुनर्जन्म ही है—जब मरने के बाद प्राणियों का जन्म हो जाता है, तो फिर परलोक नाम से किसी स्थान विशेष की कल्पना और यह भी कल्पना कि उस कल्पित स्थान पर मरे हुये प्राणियों की रूहोंका स्टाक रहता है और उसी स्टाकमेंसे

---

* देखो लीडर २७ जून २५ जुलाई १९२६ तथा पैम्फ़लेट Reincarnation by kr, Kanai Nandan sahai P.I to 8

+ देखो लीडर १२ तथा ३० अगस्त १९२६ तथा उपर्युक्त पैम्फ़लेट पृष्ठ ९—१४। () देखो उपर्युक्त पैम्फ़लेट पृष्ठ १५—२१।

---

निमित्त पुरुष ( Medium ) के द्वारा किसी रूह का बुला लेने की कल्पना, कल्पना मात्र है।

**ऋषि कुमार**—यदि रूहोंके बुलाने की और उनके संदेश देने की बात कल्पना मात्र और निस्सार है, तो जो अनेक नर नारी रूहोंके बुलानेकी बात कहा करते हैं, क्या ये सब मिथ्यावादी और झूठे हैं? इन रूहों के बुलाने का अमल करनेवालों में अनेक वैज्ञानिक हैं, अनेक शिक्षित और विश्वस्त पुरुष हुआ करते हैं। क्या यह सब जान बूझ कर झूठ बोला करते हैं?

**आत्मवेत्ता**—यह नहीं कहा जा सकता कि रूह के बुलाने का दावा करने वालों में सब के सब झूठ और चालाक पुरुष ही हुआ करते हैं—कुछ सच्चे भी हुआ करते हैं। परंतु कुछ चालाक झूठे और पेशेवर भी हुआ करते हैं—हम दोनों प्रकार के नर नारियों का यहां उल्लेख करते हैं-जो लोग सच्चे हैं और नेक नीयती से अमल करते हैं उनसे भूल यह हुआ करती है कि वे मानवी शक्तियों का पूर्ण ज्ञान न रखते हुए और ईश्वर प्रदत्त अलौकिकता से जो उनके मस्तिष्क और चित्त में निहित होती है, अपरिचित रहते हुये जो काम स्वयं उनकी शक्तियों से हुआ करता है, उसे किसी बाह्य साधन से हुआ, समझ लिया करते हैं—और इसी भ्रम में पड़ कर रूहों के बुलाने आदि का विश्वास कर बैठा करते हैं—इस बात का ज़िक्र हम कुछ विस्तार से कहते हैं, जिससे सब के नर-नारी अच्छी तरह से जो बात सच है, उसे जान सकें।

* परोक्ष ज्ञान किस प्रकार का हुआ करता है ? *

रूह के बुलाने आदि का विषय परोक्ष ज्ञान से सम्बन्धित है इसलिए परोक्ष ज्ञान किस प्रकार हुआ करता है पहले इसी बात पर विचार करना चाहिए—परोक्ष ज्ञान सत्यज्ञान योग की एक विभूति है-पश्चिमी अध्यात्मवाद की परिभाषा में इस विद्या को "परोक्षदर्शन (Clair voyance (clear seeing) intuition, or second sight) कहते हैं—प्रत्यक्ष का ज्ञान हमको चक्षु आदि इन्द्रियों के द्वारा हुआ करता है। परन्तु परोक्ष का ज्ञान, समझा जाता है कि इन्द्रियों के द्वारा नहीं हो सकता—यह विचार एक दरजे तक ठीक है, परन्तु शक्तियों के विकसित हो जाने पर मस्तिष्क की शक्तियां भी जिनसे इन्द्रियों के द्वारा ज्ञान प्राप्त किया जाया करता है और जिन शक्तियों को

उचित रीति से सूक्ष्म या असली इन्द्रियां भी कहा जाता है, विकसित हो जाती हैं और उनसे परोक्ष का ज्ञान भी प्राप्त हो जाया करता है। हम जिनको, देखना सुनना आदि कहा करते हैं, इनकी असलियत पर विचार करने से पता लगता है कि ये तरतीब के साथ नियत संख्यामें पचभुतों उठे हुए कम्पनी के प्रभाव के सिवा और कुछ नहीं है—उदाहरण के लिए श्रोवेन्द्रिय पर विचार कीजिए। इस इन्द्रिय के द्वारा हम वायु उठी हुई तरंगों की एक लड़ी को ग्रहण किया करते हैं, जो मस्तिष्क में पहुँच कर क्षोभ उत्पन्न करती है और उसी क्षोभ ( Distur bance ) का हम शब्द या ध्वनि कहा करते हैं—इसी प्रकार चक्षु इन्द्रिय पर विचार कीजये इस इन्द्रिय के द्वारा हम आकाश ( Either ) में वेग पूर्वक उठी हुई नियमित तरंगों को ग्रहण करते हैं और उन्हीं तरगों के ग्रहण करने मात्र से हम प्रकाश का अनुभव करते हैं। * इसी प्रकार स्पर्श, स्वाद और सूंघना भी इन्हीं तरंगों के भिन्न भिन्न मात्रा में उठने और उनके उन उन इन्द्रियों द्वारा ग्रहण करने के परिणाम हैं-निकटवर्ती तरंगो का ग्रहण करना प्रत्यक्ष और दूरवर्ती तरंगों का ग्रहण करना परोक्ष कहलाता है—यह बात अनुभव सिद्ध है कि शब्द, स्पर्श, रूपादि के रूप में परिवर्तित होने वाली आकाशादि के उन तरंगों को ग्रहण करने की योग्यता न केवल भिन्न भिन्न पुरुषों में भिन्न भिन्न प्रकार की होती है, किन्तु एक ही पुरुष में एक समय एक प्रकार की होती है और दूसरे समय में दूसरे प्रकार की एक पुरुष बहुत समीप के वस्तुओं को देख और बहुत समीप के शब्दों को ही सुन सकता है। परन्तु दूसरा पुरुष उससे कहीं अधिक दूर की वस्तुओं या शब्दों को देख या सुन सकता है—क्यों ऐसा होता है—इसका कारण यह है कि

एक पुरुष समीप और दूसरा उसकी अपेक्षा, दूर की तरंगों को ग्रहण करके अधिक दूर की वस्तुओं या ध्वनि को देख या सुन सकता है, यह अन्तर क्यों होता है ? इस प्रश्न का उत्तर यही दिया जा सकता है कि दूसरे पुरुष की ग्राहक शक्ति पहले की अपेक्षा अधिक है—फिर यह अधिकता क्यों है ? इसका कारण और एकमात्र कारण, उसके अभ्यास आदि कर्मों की पहली अपेक्षा

---

* तरंगों का विवरण *

* वैज्ञानिक ने अनुमान किया है कि जब आकाश (ऊपर) में ४० मील तरंग उठते हैं, मनुष्य लाल रंग देखा करता है और जब ८० मील तरंग उठती हैं, तब बेजनी, ४० और ८० मील के बीच में उठती हुई तरंगों से बाकी रंग देखे जाया करते हैं।

---

उत्कृष्टता है—अच्छा यदि किसी तीसरे व्यक्ति के अभ्यास आदि कर्म, इस दूसरे पुरुष की अपेक्षा और भी अधिक श्रेष्ठ हों, तो क्या वह इसके भी अधिक दूर की वस्तुओं या शब्दों को देख या सुन सकेगा ? अवश्य देख या सुन सकेगा—वह दूरी जब साधारण मानवी बुद्धि की अपेक्षा से, कुछ अधिक बढ़ जाती है, जिसे सर्व साधारण परोक्ष कहने लगते हैं, तो फिर उसी दूरी का, दर्शन या श्रवण द्वारा, ज्ञान प्राप्त कर लेना "परोक्ष ज्ञान" कहलाता है—

मनुष्य अल्पशक्ति है, वह बहुत सी अवस्थाओं में एक विशेष सीमा तक ही, प्रकाशादि की तरंगों को ग्रहण कर सकता है उससे अधिक नहीं। जेम्स ने अपने "मनोविज्ञान" में इस बात को बहुत अच्छी तरह से बतलाने का यत्न किया है। * परन्तु इसके विरुद्ध बहुत सी अवस्थाओं में शक्ति के विकसित होने पर मनुष्य अधिक दूर की तरंगों को भी ग्रहण कर सकता है।

"मस्तिष्क से रंगीन किरणों का निकास"

बिना पूछे गाछे एक सीमा तक मनुष्य के भीतरी भावों का पता लगाना भी परोक्ष दर्शन की सीमा के अन्तर्गत है—योग की विभूतियो में परोक्ष दर्शन सम्मिलित है-मनुष्य के मस्तिष्क से जो उसके भावों और विचारों का केन्द्र होता है, रंगीन किरणें निकला करती हैं, जिन्हें, शक्ति विकसित किये बिना, कोई नहीं जान सकता—इन किरणों का कुछ विवरण यहां दिया जाता है:—

( क) जो मनुष्य अत्यन्त आवेश वाले (Passionate) होते हैं, उनके मस्तिष्क से निकलने वाली किरणें गहरे लाल रंग की होती हैं। (ख) परोपकारी पुरुषों की किरणें गुलाबी रंग की होती हैं (ग) यश की कामना वाले पुरुषों की किरणें नारंगी रंग की होती हैं। (घ) गहरे विचारकों की किरणें गहरी नीली रंगत वाली हुआ करती हैं (च) कला प्रेमियों की किरणें पीली। (छ) उद्विग्न और उदास पुरुषों की किरणें धवल (Gray)। (ज) नीच प्रकृत वालों की किरणें मैली, बादामी। भक्ति और सदुद्देश वाले पुरुषों की हलकी, नीली। (त) उन्नत शील पुरुषो की हलकी, हरी। (थ) शारीरिक

(I "There is no reason to suppose that order of vibrations in the outerworld is anything like asinterupted as the order of our sensations. Betwe the quickest audible air waves (40,000 vibrations a second at the outside) and the lowest sensible heat-waves [which number probably billions] nature must somewhere have realised in numberable intermediary rates which we have no means for perceiving. [Psychology by Prof James]

और मानसिक रोगियों की गहरी रगें होती हैं। इत्यादि २।

इन किरणों के देखने का अभ्यास करने पर कोई पुरुष मानवी हृदयों का पाठ करने की योग्यता प्राप्त कर सकता है।

इंगलैण्ड के एक डाक्टर स्टेन्सन हुकर ( Dr. Stenson Hooker ) ने जो विद्युत प्रकाश और रंग चिकित्सा के विशेषज्ञ हैं इस का बहुत सा विवरण दिया है+—इस प्रकार चेहरे को देख कर ज्ञान प्राप्त कर लेना आकृत विद्या ( science of facial Expression ) कहलाता है—अनेक वैद्य होते हैं, जो केवल चेहरे को देख कर ही रोग का सब वृतान्त जान लिया करते हैं। रोग का वृतान्त वे न रोगी से पूछते हैं और न नाड़ी आदि देखा करते हैं:।

**प्रियव्रत**—यदि परोक्ष ज्ञान प्रत्यक्षके सदृश ही होता है जैसा आपने उपदेश किया है तो उस में मत भेद नहीं होना चाहिये परन्तु परोक्ष ज्ञान की अवस्था यह है कि जितने परोक्ष ज्ञान बतलाने के दावेदार है, उन सब की अलग अलग डफली और अलग अलग राग हुआ करता है। इसका कारण क्या है?

**ज्ञानदेवता**—जैसा कि कहा जा चुका है इसके दो कारण हैं, एक तो परोक्ष ज्ञान बतलाने का दावा करने वालों में अभ्यास और ज्ञान की कमी, दूसरे छल कपट, जिसका कुछ विवरण आगे दिया जायगा—इस समय रूहों के बुलाने आदि का प्रकरण पश्चिम से चला है, इस लिये पहले इस बात को देखा जायगा कि वहां यह प्रकरण कैसे चला।

॥ अनूपशहर ॥

+अनूपशहर के पं० गोपालवल्लभ और उनके पुत्र पं०

---

+ Clairvoyance by R.O.stockes p.104,

भोलादत्त वैद्य इसी प्रकार के वैद्य थे—केवल आकृति ( मुख, नेत्रादि ) देखकर ही चिकित्सा करते थे—उनकी इस प्रकारकी चिकित्सा का हाल अनूपशहर में प्रसिद्ध है—

### परोक्ष सिद्धांतों में मतभेद

पश्चिमी अध्यात्मवाद का जन्म मैसमर+ से हुआ समझा जाता है—परन्तु उसी समय से जितने भी सिद्धांत इस(अध्यात्म ) वाद से सम्बन्धित बने, उसमें सदैव ज्ञान की कमी से परस्पर विरोध रहा और वे कभी ऐसे नहीं हुये कि संदिग्ध दृष्टि से न देखे जाते रहे हों मनुष्य की अल्पज्ञता की वजह से आम तौर से उन सिद्धान्तों में जो परोक्ष कहे जाते हैं, मतभेद रहाही करता है। उदाहरण के लिये जान बौवी डाड ( Jhon Bovee dad ) के वैद्युत सिद्धान्त ( El ctrical theory ) को देखें, जिसमें धनात्मक फुफ्फुस और ऋणात्मक रक्त ( *Positi*-ve bungs and nagnetive blood ) पर विचार हुआ है, तो प्रतीत होता है कि जब इस वाद का प्रचार हुआ तो अनेक स्त्री पुरुष इसे मानने लगे और प्रत्येक प्रकार से उसका समर्थन करने लगे थे यही हाल "बेड" ( Braid ) के। सिद्धान्त का था, जिसके रूह से उसने यह साबित करने का यत्न किया था कि मनुष्य में कोई वस्तु ऐसी नहीं है, जिसकी तोल न हो सकती हो—इसका भी बड़ा मान हुआ परन्तु इन सिद्धान्तों की

---

+ मेस्मर [ Mesmer ] जरमन का एक डाक्टर था जिसने सन् १७७८ ई० में एक सिद्धान्त निकाला कि एक मनुष्य अपनी शक्ति से एक दूसरे व्यक्ति की इच्छा शक्ति और तन्तुजाल [ Nervous system ] को प्रभावित कर सकता है—मैस्मरका यह वाद मेस्मरइज्म [ Mesmerism of *Mesmers* theory oi fluidic emanations or animal magnetism ] के नाम प्रसिद्ध है।

आयु अधिक नहीं हुई—थोड़ेही अरसे के बाद अपने अपने आविष्कर्त्ताओं के नाम कागज़ के पृष्ठों पर छोड़ कर सदा के लिये क्रियात्मक जगत् में ये सिद्धान्त विलीन होगये।

मेस्मरइज़्म एक रोग है

इस ज़माने में अनेक मनुष्य मेस्मर के सिद्धान्त को तन्तुआत्मिक रोग+ समझते हैं और कहते हैं कि उसका जो कुछ भी प्रभाव होता या होसकता है उसकी व्याख्या शरीरविद्या (Physiology) से की जा सकती है—"मेस्मरइज़्म" रोग हो या न हो परन्तु यह और इस प्रकार के अनेकवाद सुगमता से समझे जा सकते हैं यदि मनुष्य अपनी शक्तियों को भली भांति समझ लेवे—अपनी शक्ति के अज्ञान से मनुष्य से जो काम स्वयं होता है, उन्हें वह भूत, प्रेत या बुलाई हुई कल्पित रूहों का किया हुआ समझ लिया करता है।

सोमदेव—वे शक्तियां कौनसी हैं, जिन्हें मनुष्य नहीं जानता और जिनके न जानने से भ्रम में पड़ जाया करता है।

आत्मवेत्ता—शक्तियों के कोश मनुष्य के अन्तःकरणों में निहित रहते हैं, उन्हीं के न जानने से मनुष्य भ्रम में पड़ जाया करता है, उनका विवरण इस प्रकार है।

अन्तःकरण और उनके नाम

अन्तःकरण चार होते हैं और इसीलिये अन्तःकरण चतुष्टय भी कहते हैं वे चार अन्तःकरण ये हैं (१) मन (२) बुद्धि (३) चित्त (४) अहंकार इनके कार्यों का विवरण इस प्रकार है:—

---

+ The law of psychic phenomena by T, J-Hudson-p 52 [ Introduction ]

* मन का काम *

मन को इन्द्रियों का राजा कहते हैं—उसका काम इन्द्रियों से काम लेना है। दशों ज्ञान और कर्म इन्द्रियां उसके आधीन रहती हैं।

*"बुद्धि का काम"*

बुद्धि का काम तर्क है—तर्क से सत्यासत्य का निर्णय करना बुद्धि का काम है।

"चित्त का काम"

चित्त के तीन कार्य हैं-(१) स्मृति रूप में ग्रहण की हुई बातों को अपने अधिकार में रखना-यहां पर यह ध्यान में रखना चाहिए कि स्मृति ३ सूरतों में चित्त में रहा करती है-उसकी पहली सूरत मामूली स्मृति (किसी विषय का याद रखना-*Memory*) है। दूसरी सूरत संस्कार Impressions है। मनुष्य के ऊपर अपने कृत्यों से तथा संसार में घटित अनेक घटनाओं से जो प्रभाव पड़ा करते हैं उन्हीं का नाम संस्कार है-तीसरी सूरत कर्म जन्य वासना है, जिसका पहले व्याख्यान हो चुका है-स्मृति इन तीनों सूरतों में चित्त के भीतर रहा करती है, और वह न केवल प्रचलित जन्म ही का संग्रह होती है, किन्तु जन्म जन्मान्तरों में प्राप्त और संग्रहीत हुआ करती है।

(२) चित्त वृत्ति को समीप या दूर भेजकर विषयों का ग्रहण करना। (३) चित्त क्षोभ (Emotion)

* "अहंकार का काम" *

अहंकार का कार्य यह है कि इसके आने से मनुष्य में ममता की उत्पत्ति होती है अर्थात् उसमें अपने मन के भावों की जागृति होती है।

रमेश—पश्चिमी शरीर शास्त्र में इन अन्तः करणों का वर्णन इस प्रकार का नहीं देखा जाता।

आत्मवेत्ता—यह ठीक है-पश्चिमी शरीर विद्या (physiology) बहुत अधूरी है। उसमें केवल स्थूल शरीर का वर्णन है-सूक्ष्म और कारण शरीरों को वह नहीं जानती। हां, पश्चिमी मनोविज्ञान (physiology) में कुछ वर्णन अन्तःकरणों का है परन्तु जहां चित्त (mind) के कार्यों की बात आती है—तो उसे वह भी अलौकिक (mystry) कह कर टाल दिया करती है-अवश्य अब पश्चिम के कुछेक विद्वानों ने अंतःकरणों के समझनेका यत्न किया है-एक विद्वान्ने बतलाया है कि मस्तिष्क दो प्रकारका है* एक का नाम है तार्किक (objective mind) दूसरे का नाम चैत्तिक मस्तिष्क (Subjectivemind) उसने दोनों कार्य्यों का विवरण इस प्रकार दिया है:—

* "तार्किक मस्तिष्क का कार्य्य" *

इस मस्तिष्क का कार्य्यक्षेत्र बाह्य जगत् होता है-और कार्य्य के साधन पंच ज्ञानेन्द्रियां हुआ करती हैं, मनुष्य की शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इस मस्तिष्क की सृष्टि हुई है और इसलिए यह अपने प्राकृतिक साधनों से इस मामले में मनुष्य का पथ प्रदर्शन किया करता है——इसका सबसे बड़ा काम तर्क के द्वारा बाह्य उलझनों का सुलझाना है अन्तःकरण चतुष्टय में से मन और बुद्धि दोनों के स्थानमें इस मस्तिष्क की कल्पना पश्चिमी मनोविज्ञान में की गई है-शरीर शास्त्र में इसी को मुख्य मस्तिष्क (cerebum) कहते हैं।

---

* The Law of psychic phenomena by Hudson p, 29 and 30

* "चैतिक मस्तिष्क के कार्य्य" *

यह मस्तिष्क अपने कार्य्य क्षेत्र में इन्द्रियंतर साधनों से से कार्य्य करता है-इन्द्रियों से इसका कुछ भी सम्बन्ध नहीं होता, इसके कार्य्य (ज्ञान प्राप्ति) का साधन अन्तर्मुखवृत्ति (Intuition) है यह चित्त मोक्ष (Emotions) स्मृति का भण्डार है, यह मस्तिष्क अपने उच्च और महान् कार्यों को उस समय किया करता है, जब तार्किक मस्तिष्कका कार्य्य बन्द हुआ करता है-स्वप्न अथवा मूर्छित अवस्था में वह मूर्छा चाहे मेस्मरइज्म द्वारा उत्पन्नकी गई हो अथवा अन्य किन्हीं कारणों से, यह मस्तिष्क अपने को अच्छी तरह से व्यक्त किया करता है—और उसी अवस्था में इसके कार्य्य आश्चर्य्य जनक हुआ करते हैं। वह विना आँख खोले देखता है, अपनी (चित्त) वृत्तियों को दूर२ भेजकर वहां का प्रायः यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर लिया करता है—दूसरों के हृदयों की जानकारी भी प्राप्त कर लिया करता है-परोक्ष का ज्ञान प्राप्त कर लेना इसके लिये वैसा ही सुगम है, जैसा तार्किक मस्तिष्क के लिए प्रत्यक्ष का इसी का नाम परोक्ष दर्शन [ claitvoyance ] है-

* "दोनों मस्तिष्कों का अन्तर" *

दोनों मस्तिष्कों का स्पष्ट अन्तर समझ लेने ही से मनुष्य उनके कार्य्यों की सीमा को ध्यान में रख सकता है, इसलिये उनका अन्तर समझ लेना चाहिए, तार्किक मस्तिष्क का काम शारीरिक है और शरीर से बाहर हुआ करता है और उसके कार्य्यक्षेत्र की सीमा इन्द्रियों की सीमा से सीमित है—परन्तु इसके सर्वथा विपरीत चैतिक मस्तिष्क स्थूल शरीर से भिन्न एक पृथक् स्वतन्त्र सत्ता है और उसके कार्य्य के साधन भी इन्द्रियों से भिन्न स्वतन्त्र और आन्तरिक हैं—हडसन ने इस

दूसरे मस्तिष्क को ७०५। कहा है—परन्तु आत्मा तो शरीर और मस्तिष्क सभी का अधिष्ठाता है। उसको एक मस्तिष्क कहना उचित नहीं है—अन्तःकरण में से चित्त का स्थानापन्न हम इस चैत्तिक मस्तिष्क को कह सकते हैं—यह चैत्तिक मस्तिष्क कब अपने अलौकिक कार्य्यों का सम्पादन कर सकता है—जब मनुष्य धारणा को अभ्यास करके चित्त को एकाग्र कर सकने की सिद्धि प्राप्त कर लिया करता है।

* " एक और मुख्य अन्तर " *

इन दोनों मस्तिष्कों में एक और भी बड़ा अन्तर है और वह यह है कि जब तक तार्किक बुद्धि काम करती रहती है और मनुष्य जागृतावस्था में रहा करता है, उस समय तक उस पर मेस्मरेज्म या हिपनाटइज्म का कोई प्रभाव नहीं पड़ता अर्थात् कोई स्त्री-पुरुष यह चाहे कि उस पुरुष को, जिसकी तार्किक बुद्धि बलवती है और अपना काम दृढ़ता के साथ करती है, मेस्मरइज्म आदि से मूर्छित कर देवे तो यह सम्भव नहीं है—यहां वह पुरुष अवश्य मूर्छित हो सकता है, जिसकी तार्किक बुद्धि बलहीन और इच्छा शक्ति को दृढ़ बनाने में असमर्थ सी है—तार्किक बुद्धि का काम बन्द हो जाने पर चैत्तिक मस्तिष्क अन्यों के प्रभावों को चाहे वे कितने ही निकम्मे क्यों न हों, बिना किन्तु परन्तु किए, ग्रहण कर लिया करता है-इस अवस्थामें उससे यदि कोई कहे कि तुम बन्दर हो, कुत्ते हो या बिल्ली हो, तो वह उसे तत्काल अगर मगर किये बिना स्वीकार कर लेगा इत्यादि ?

अन्तःकरणों या मस्तिष्कों के कार्य्य, उनकी शक्ति और उनके अन्तर को अच्छी तरह समझ लेने और ध्यान में रखने से मनुष्य कभी गलती में नहीं पड़ सकता ?

तपोनिधि—रूहों के बुलाने का अमल करने वाले क्या केवल इन अन्तःकरणों की शक्तियों को न जानने ही से भूल पड़ जाया करते हैं ?

आत्मवेत्ता—एक कारण इसका और भी है और वह है मनुष्य के शरीरों का शुद्ध और वास्तविक ज्ञान का अभाव यदि ये दोनों कारण दूर कर दिए जावें, तो फिर मनुष्य रूहों के बुलाने और उनके सन्देश लेने के भ्रम में नहीं पड़ सकता ?

तपोनिधि—शरीरोंका शुद्ध और वास्तविक ज्ञान क्या है?

आत्मवेत्ता—इसका कुछ ज़िक्र तो इससे पहले किया जा चुका है।

---

देखो इसी पुस्तक के दूसरे अध्याय का दूसरा परिच्छेद

---

* "तीनों शरीर मिलकर काम करने के लिए बने हैं" *

इन शरीरों के सम्बन्ध में एक ख़ास बात, जिसको पहले नहीं कहा गया है, वह यह है कि ये तीनों ( १-स्थूल, २-सूक्ष्म, ३-कारण ) शरीर पृथक् २ एक दूसरे से सर्वथा अलग होकर कुछ काम नहीं कर सकते। रचयिता ने इनकी सृष्टि मिलकर काम करने के लिए ही की है, कारण शरीर विवादास्पद नहीं इसलिए उसके सम्बन्ध में और कहने की जरुरत नहीं है।

* "स्थूल और सूक्ष्म शरीर एक दूसरे से स्वतन्त्र होकर काम नहीं कर सकते" *

सूक्ष्म और स्थूल शरीर के सम्बन्ध में यह अच्छी तरह से समझ लेना चाहिए कि ये दोनों एक दूसरे से पृथक् हो कर क्रियात्मक जगत् में कुछ नहीं कर सकते, सूक्ष्म शरीर में

इन्द्रियों की असली शक्ति है और स्थूल शरीर में इन्द्रियों के गोलक हैं। शक्ति और गोलक जब दोनों मिलें, तभी काम हो सकता है, अन्यथा नहीं।

चारुदत—कहा जाता है कि स्वप्नावस्था में स्थूल नहीं अपितु केवल सूक्ष्म शरीर ही काम किया करता है:—

आत्मवेत्ता—स्वप्नावस्था क्रियात्मक जगत् नहीं है— क्रियात्मक जगत् का सम्बन्ध केवल जागृतावस्था ही से है और जागृतावस्था में दोनों शरीर मिलकर ही काम किया करते हैं। उदाहरण के लिए आंख को लो—यदि सूक्ष्म शरीरान्तर्गत नेत्र शक्ति में कुछ विकार आ चुका है, तो आंखों के गोलकों के अच्छे खासे होने पर भी मनुष्य नहीं देख सकता, इसके विपरीत यदि नेत्र शक्ति ठीक है परन्तु गोलक विकृत हैं तब भी देखनेका काम बन्द हो रहेगा। यहि अवस्था अन्य इन्द्रियों की समझनी चाहिए।

● सूक्ष्म शरीर की सत्ता ●

सूक्ष्म शरीर चीज़ क्या है, इसके समझने में दो प्रकार की भूलें हुआ करती हैं। एक प्रकार की भूल करने वाले समझा करते हैं कि सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर का उसी आकृति वाला सूक्ष्म शरीर है। उसके हाथ, पांव, कान, नाक आदि सब कुछ हैं, परन्तु बहुत छोटे पैमानेमें और यह कि जब मनुष्य उत्पन्न होता है, तो उसमें मुंहके रास्तेसे यह सूक्ष्म शरीर Miniature) प्रवेश करता है। जब वह मरता है, तो नंगे बालक के सदृश उसके शरीर से मुंह ही के रास्ते से निकल जाया करता है।*

दूसरी प्रकार की भूल करनेवाले उसको स्थूल शरीर के खोल की भांति स्थूल शरीर के चारों ओर माना करते हैं और

उसे तारों से सम्बन्धित शरीर (Astral body) कहा करते हैं। इस विचार का प्रारम्भ तो योरुप के एक दार्शनिक 'पैरसेलसैल' (Paracolsa) ने उन्नत किया था परन्तु अब कुछ सम्प्रदायों में आम तौर से माना जाने लगा है। ()

बसन्ती देवी—मैंने यह सुन रक्खा है कि ये तीनों शरीर

* Crawley's Idea of soul P, 207 तथा आत्म दर्शन पृष्ठ १६० (पहला संस्करण)

+ आत्मदर्शन पृष्ठ १८८, १८९।

() उन (रूहों) के उस (परलोक निवास की) अवस्था में हस्तपादादि अवयव रहते हैं—उनका सूक्ष्म देह स्थूल देह की प्रतिछाया है...[ बी० डा० ऋषि कृत सुभद्रा पृष्ठ ५० ]

पृथक् २ हैं और स्वतन्त्रता से एक दूसरे से सर्वथा पृथक् हो कर अपना अपना काम अपने अपने लोक में किया करते हैं कहा जाता है किः—

* "तीन लोक और तीन शरीर" *

लोक तीन हैं:—(१) स्थूल जगत् (*Physical world*) (२) इच्छा लोक (*Desire world*) (३) मानस लोक (*Mental world*)—ये तीनों पृथक् २ नहीं हैं, किन्तु तीनों एक दूसरे में समाविष्ट (Inter penetrating) हैं—इसी प्रकार शरीर भी तीन हैं। जिनमें से एक २ शरीर का सम्बन्ध एक २ लोक से है। शरीर एक प्रकार का यन्त्र है, जिसका काम यह होता है कि वह चेतना का सम्पर्क उस लोक से करा देवे, जिससे उसका सम्बन्ध है। उदाहरण के लिए स्थूल शरीर को देखिए। इसका काम यह है कि स्थूल संसार का ज्ञान जीव को करा देने का माध्यम बने। इसी प्रकार दूसरा सूक्ष्म शरीर

( Astral body ) दूसरे सूक्ष्म जगत् ( The intermediate or astral world ) की जानकारी करा देने का साधन है— यह दूसरा शरीर अभी पूर्ण विकास नहीं प्राप्त कर चुका है, अन्यथा जिस प्रकार ५ ज्ञानेन्द्रियों से स्थूल जगत् प्रत्यक्ष हो जाता है। इसी प्रकार सूक्ष्म शरीर से सूक्ष्म जगत् प्रत्यक्ष हो जाता है। इन ५ ज्ञानेन्द्रियों के सिवा इसी प्रकार की दो इन्द्रियां मस्तिष्क में और हैं:—

(१) पाट्युटेरी शरीर ( Pituitary body ) *

* मस्तिष्क की एक ग्रंथि है, जिसे (Pituitary gland) कहते हैं। पाट्युटेरी शरीर [Pituiatry body] एक कल्पित शरीर है, जिसकी इस समय कोई हस्ती नहीं है। कारण शरीर को ठीक न समझने से शायद यह तीसरे शरीर की कल्पना की गई है।

(२) पीनियल ग्रन्थि (Pineal Gland) *

इनके शरीर वैज्ञानिक कहते हैं कि ये इन्द्रियां थीं, परन्तु ये बेकार (Vestigial) हैं। परन्तु कुछ लोगों का विचार यह है कि अवश्य पीनियल ग्रंथि ( Pineal Gland ) मनुष्य की तीसरी आंख थी और यह कि अब आंख का काम नहीं देती परन्तु वे कहते हैं कि इसका विकास हो जाने के बाद इस इन्द्रिय का काम यह होगा कि इसके द्वारा एक मस्तिष्क से दूसरे मस्तिष्क में विचार-परिवर्तन हुआ करेगा। और इसी प्रकार विकास के बाद पाट्यूटेरी शरीर ( Pituitary body ) का काम यह होगा कि उससे दूसरा सूक्ष्म ( Astral ) जगत् स्थूल जगत् की तरह प्रत्यक्ष हो जाया करेगा—इस समय हमारा, दूसरे जगत् से, स्वप्न के द्वारा सम्बन्ध हुआ करता है—परन्तु इस इन्द्रिय के विकसित होने पर जागृतावस्था में भी सम्बन्ध हो सकेगा—सूक्ष्म शरीर दिन और रात बराबर

काम किया करता है। रात्रिमें सूक्ष्म (दूसरा) जगत् इसके कार्य का क्षेत्र हुआ करता है, जिसे हम स्वप्न के द्वारा जाना करते हैं और दिन में वह इच्छा लोक में काम करनेके लिए स्थूल शरीर को उत्तेजना दिया करता है—तीसरा लोक "मानस लोक" है। हम प्रथम के दो लोकों की भांति इस तीसरे लोक में भी रहा करते हैं। जब हम विचार करते हैं, तो उस समय सूक्ष्म शरीर वाली प्रकृति से भी अधिक सूक्ष्म प्रकृति (Matter) का प्रयोग

* मस्तिष्क की यह एक ग्रंथि है. प्रसिद्ध दार्शनिक स्कोर्ट ने इसको जीवात्मा का निवास स्थान बतलाया है— [ आत्मदर्शन पृष्ठ १९१, १९२ फुट नोट ]

में लाते हैं, जिसे प्रोफेसर किंगडन क्लीफोर्ड ( prof. kingdon clifford ) ने "मानस द्रव्य (Minc ttaff) का नाम दिया है। जिस प्रकार आकाश (Ether) मे तरंगों के उठने से प्रकाश का ज्ञान होता है, इसी प्रकार मनोभावों के परिवर्तन का ज्ञान मानस द्रव्य में उठी तरंगोंके द्वारा हुआ करता है। यह मानस द्रव्य भी, जिसे चेतना का यन्त्र कह सकते हैं, बहुत कम विकसित है, परन्तु इसका भी विकाश हो रहा है और पूर्ण विकसित हो जाने पर हम सूक्ष्म शरीर को भी पीछे छोड़ सकेंगे और उस समय हमें मानस जगत् का पूरा २ ज्ञान प्राप्त हो सकेगा—यही वह जगत् है. जिसे मरने के बाद स्वर्ग कहा करते हैं—इन्हीं तीन लोकों को "भूलोक", "भुवर्लोक" और "स्वः (स्वर्ग) लोक" भी कहते हैं। *

**आत्मवेत्त**—जो उदाहरण सुनाया गया है, उसमें स्वयं स्वीकार किया गया है कि सूक्ष्म और पीट्यूटेरी दोनों

शरीर अभी अविकसित अथवा अपूर्ण विकसित हैं और उनके तथा उनसे सम्बन्धित लोकों के जानने के साधन पीनियल ग्रन्थि और पीट्यूटरी ग्रन्थि ता अभी सर्वथा अविकसित हैं—ऐसी दशा में इन स्वतन्त्र शरीरों और उन से सम्बन्धित तीन लोकों की कल्पना, कल्पना मात्र है।—वास्तविक और क्रिया-

* Man's life in the three world by Dr, annih Besant

+ प्लेटो ने भी एक तत्व (Trinity) की कल्पना की थी. उसके नाम उसने [१] जीवात्मा Soul [२] आत्मिक शरीर ( soul body ) [३] पार्थिव शरीर (Earth body) रक्खे थे। स्वीडनबर्ग, जो अपने आपको ईश्वर का नियत किया हुआ केरीकिस्म के लिये पैगम्बर समझा करता था [ आत्मदर्शन पृष्ठ १९०—१९८ ] उसने भी ३ और शरीरों को एक और प्रकार से वर्णन किया है वह कहता है कि प्रत्येक मनुष्य के लिये ३ शरीर मिले हैं।

१—आन्तरिक पुरुष Internal ma सयुक्तिक पुरुष ( Rational ma ) बाह्य पुरुष [ External man ]

उसने जीवन को भी तीन भागों में विभक्त किया है।

(१) प्राकृतिक (२) आत्मिक (३) दिव्य —Celestial The Law of pychic phenomina by Hudson p. 27 and 28

त्मक जगत् से इनका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है—सूक्ष्म शरीर के सम्बन्ध में इस प्रकार की कल्पनाओं ने ही रूह बुलाने आदि की कल्पनायें प्रचलित करदी हैं, ऐसा प्रतीत होता है—सूक्ष्म और स्थूल शरीरों के यथार्थ सम्बन्ध के जानने और समझ लेने से यह कल्पितवाद सर्वथा निराधार प्रतीत होने लगता है, सुतराम् कथित भूलों के दूर कर लेने और मस्तिष्कों के कार्य्य और शरीरों के सम्बन्ध की ठीक समझ लेने से मनुष्य भूत प्रेत, रूहों के बुलाने आदि के भ्रम जाल से मुक्त हो

जाता है। अस्तु अब हम देखना चाहते हैं कि रूहों के बुलाने आदि के सम्बन्ध में जो कतिपय प्रयोग किये जाते हैं, उनका साधन किस प्रकार उपर्युक्त ज्ञान प्राप्ति से किया जा सकता है

"दूसरा परिच्छेद"

## रूहों के बुलाने के साधनों का विवरण।

रूहों के बुलाने के लिये निम्न साधन प्रयोग में लाये जाया करते हैं:—

❀ रूहों के सन्देश लेने के साधन ❀

(१) प्लैनचिट (२) स्वयं प्रेरित लेख ( *Automaticwriting*) (३) मेज का हिलाना (*Table Tilting*) (४) उज्ज्वल स्वप्न (५) परिचित ज्ञान (*Telepathy*) (६) भूत, प्रेत (*Ghost*) अब इसमें से प्रत्येक का पृथक् पृथक् कुछ विवरण दिया जाता है:—

" प्लैनचिट का कार्य्य

"प्लैनचिट" एक हृदयाकार लकड़ी का टुकड़ा होता है, जिसके नीचे दो छोटे पहिये औरएक पेन्सल लगे होते हैं और उन्हीं के सहारे वह भूमि से उठा हुआ रहता है उसके ऊपर दोनों किनारों पर दो पुरुष अपना अपना एक एक हाथ रखते हैं, इस प्रकार हाथों के रखने से कोई शक्ति उत्पन्न हो जाती है, जिसमें "प्लैनचिठ" नीचे रक्खे हुए कागज़ पर घूमने लगता है और उसके इस प्रकार घूमनेसे कुछ अक्षर या चिन्ह कागज़ पर बन जाते हैं—रूहोंके बुलाने वालोंका कथन है कि "प्लैन चिठ" से कागज़ पर कुछ लिखा जाता है, वह बुलाई हुई रूहों की प्रेरणा का परिणाम हुआ करता है, परन्तु यह उनका [illegible] मात्र है।

* "उसके सम्बन्ध में टुकेट की सम्मति" *

एक विद्वान् "टुकेट" ने प्लैनचिटके कार्य्य के लिए सम्मति दी है कि उसके लेख शिराओं पर काम करने वाले स्वभाव (*Neurotic temperament*) और स्वयं प्रेरणा (*Auto suggestion*) की अवस्था के फल होते हैं।*

* "उसका असली कारण" *

मनुष्य अपनी शक्तियों को जानें और उन्हें काम में ला सके इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए महामुनि पतञ्जलि ने योग की शिक्षा का विस्तार किया था। अभी तक हम थोड़ा बहुत ज्ञान पहले मस्तिष्क का रखते हैं, जो इच्छा शक्ति का केन्द्र है और जिसके द्वारा इरादा करके कार्य्य किए जाया करते हैं। परंतु दूसरे मस्तिष्क के कार्यों से, जिसका सम्बन्ध अनिश्चित प्रभावों के अङ्कित करने से है, आम तौर से मनुष्य अनभिज्ञ देखे गए हैं, जैसा कि कहा जा चुका है—हमारे अन्तःकरणों में चित्त एक ऐसी वस्तु है, जिसमें हमारे जन्म-जन्मान्तरके किए हुये कार्य्यों की वासना और प्राप्त किए हुए ज्ञान की स्मृति अङ्कित रहती है-साधारणतया हम उनसे अनभिज्ञ होते हैं। परन्तु प्रकरण उपस्थित होने पर चित्त अपने वासना और स्मृति के अपरिमित कोष से उसी प्रकार के विचार अंतःकरण में उत्पन्न कर दिया करता है। उन विचारों से केवल स्थूल दृष्टि रखने के कारण हम अनभिज्ञ होते हैं, इसलिए उनको अपने ही मस्तिष्क से निकला हुआ न समझ कर किसी बाह्य निर्मातृत्व (*Agency*) को, उसका कारण ठहराने की खोज किया करते हैं-इन्हीं खोज किए हुये कल्पित कारणों में से एक कारण रूहों के बुलाने का भी है।

---

* *Evidence for the supernatural by Tuckelt p. 8999*

* प्लैनचिट से क्या लिखा जाता है *

"प्लैनचिट" से किए हुए प्रश्नों के उत्तर जो लिखे जाया करते हैं, वे वही हुआ करते हैं, जो उस पर हाथ रखने वालों में से किसी न किसी के अन्तःकरण में उपर्युक्त भांति निहित हुआ करते हैं. परन्तु यह सम्भव है कि कोई प्रश्न इस प्रकार का हो, जिसका उत्तर दोनों ( हाथ रखने वालों ) में से किसी के अन्तःकरण में भी न हो, यदि ऐसा हुआ तो उसका उत्तर "प्लैनचिट" से भी नहीं लिखा जायगा—अवश्य हाथ रखने से "प्लैनचिट" में गति आजायगी, परन्तु उससे काग़ज़ पर सिवाय उल्टी सीधी रेखायें खिचने के सिवा कुछ भी न जायगा—

* 'क्या रूहें' प्लैनचिट द्वारा उत्तर देती हैं ?" *

जैसा कि रूहों के बुलानेका अमल करने वाले कहा करते हैं, यदि "प्लैनचिट" के लेख रूहों की प्रेरणा के परिणाम होता तो बिना किसी के "प्लैनचिट" पर हाथ रखने के "प्लैनचिट" स्वयं उन रूहों की प्रेरणा से, गति में आकर उत्तर लिख दिया करता, परन्तु देखा यह जाता है कि जब तक उस पर हाथ न रक्खे जावे, वह गति शून्य ही बना रहता है।

* "एक उदाहरण" *

एक उदाहरण यहां दिया जाता है, जिससे प्रगट हो जावेगा कि रूहों के न रहने पर भी "प्लैनचिट" कुछ लिख दिया करता है:——

इङ्गलैण्ड के एक विद्वान—"हेनस" ने लिखा है कि उसकी नातेदार एक स्त्री की कन्या की मृत्यु हो गई—यह स्त्री "प्लैनचिट" द्वारा अमल किया करती थी—१६०२ई०की घटना है कि "हेनस" ने "प्लैनचिट" द्वारा उसे बुलवाया। वह अपने साथ एक अमरीकन पुरुष के रूह को भी लेती आई, जो "हेनस"का

मित्र था और अमरीका के पश्चिमी सीमा में स्थित "लेफ़रॉय" (*mount Lefroy*) नामक पर्वत से गिरकर १८९६ ई० में ३० वर्ष की आयु में मर चुका था। "हेनस" का कथन है कि स्त्री ने उसे इस मृत्यु पुरुष का उससे परिचय कराया—परिचय होने पर "हेनस" ने उस पुरुष की रूह से पूछा कि जब वह पहाड़ से गिर कर मरा था, उसकी आयु क्या थी? उत्तर मिला कि ३३ वर्ष की परन्तु जब "हेनस" ने कहा कि मरते समय उसकी आयु तो ३० वर्ष की थी, तो रूह ने उत्तर दिया कि उसका अभिप्राय इस समय की आयु से है, परन्तु 'हेनस' ने कहा कि इस समय की आयु तो ३८ वर्ष की होनी चाहिये, तो इस प्रकारकी जिरह करनेसे दोनों रूहें असन्तुष्ट हुईं-इसके बाद "हेनस" ने पूछा कि अच्छा उस पहाड़ का नाम क्या था, जिससे गिर कर मृत्यु हुई थी तो "प्लेनचिट" ने लिख दिया कि "दोनों रूहें असन्तुष्ट होकर चली गईं"†—

उदाहरण से प्रगट है कि "प्लेनचिट" से सही उत्तर नहीं मिला और यह भी कि यह शब्दकि "दोनों रूहें असन्तुष्ट होकर

† *But the planchette only recorded the fact that both spirits had gone away in disgust. (The Belief in personal immortality by E. S. P. Haynes p. 33.)*

चली गईं" "प्लेनचिट" ने रूह के चले जाने के बाद लिखे तो बतलाना चाहिये कि यह लेख किसकी प्रेरणा का परिणाम था। वह स्वयं तो यह लिख नहीं सकता था और रूहें "दाख़िल दफ़्तर†" हो चुकी थीं-स्वीकार करना पड़ेगा कि वह उत्तर उसी का था, जिसका हाथ "प्लेनचिट" पर रक्खा हुआ था और इस प्रकार के उत्तर आम तौर से उसी समय दिये जाया करते हैं, जब अमल करने वाला पूछने वालों के प्रश्नों से तंग आकर अपना पीछा छुड़ाना चाहा करता है—अस्तु, यह तो हुआ

अमल का एक पहलू। परन्तु दूसरा पहलू है कि अनेक प्रश्नों के सही उत्तर भी प्राप्त होते हैं—तो भी जितनी अधिक इस मामले में खोज की जायगी, फल यह निकलेगा कि चाहे सही हो चाहे ग़लत, वह होता वही है, जो "प्लैनचिट" पर हाथ रखने वाले के हृदय में हुआ करता है—इसी परिणाम को स्पष्ट करने के लिये दो संघों का विवरण दिया जाता है:—

❀ दो संघों का विवरण ❀

इन संघों में रूहों के बुलाने और उस के संदेशों की असलियतप्रकट करने के लिये ही एक एक व्यक्ति ने प्रश्न किये थे इन में से पहले संघ में आर्य्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती की रुह को बुलाया गया और उनसे कतिपय संघ में उपस्थित पुरुषों की ओर से ख़ास ख़ास टाइप के साधारण स्थितिके प्रश्न किये गये और उत्तर प्राप्त किये-ये सब प्रश्न ऐसे ही थे, जिनके उत्तर प्रयोग कर्ताओं की ओर से दिये जा सकते थे परन्तु एक व्यक्ति ने ऋग्वेद के उस

‡ दाल + फे + ऐन = दफे = दूर।

हिस्से का एक मंत्र पढ़कर जिसका भाष्य स्वामी दयानन्द जी नहीं करने पाये थे, उसके अर्थ पूछे—यह बात निमित्त पुरुषों की योग्यता और ज्ञान से बाहर थी। इस लिये "प्लैनचिट" से मंत्रार्थ नहीं लिखे गये-यह हालत प्रायः प्रत्येक संघ में उपस्थित की जा सकती है। यदि प्रश्न करते समय सावधानी रक्खी जावे, और सोच लिया जावे कि ऐसाही प्रश्न किये जावेंगे जिनके उत्तर देने प्रयोग कर्ताओं की योग्यता और ज्ञान से बाहर हों यदि सचमुच स्वामी दयानन्द की रूह आई होती, तो स्वामीजी वेद के प्रगल्भ पण्डित थे। उनकी रूह को किसी मंत्र का अर्थ कर देना क्या मुशकिल था-एक दूसरे संघ में प्रश्नकर्ता ने उसी संघ में उपस्थित एक जीते जागते व्यक्ति को

मरा हुआ प्रकट करके उसकी रूह को बुलाने की—इच्छा प्रकट की—निमित्त पुरुष इस चालाकी से वाकिफ़ नहीं थे, जो उनके साथ की गई थी, इस लिये अपने नियमों के अनुसार उन्होंने थोड़ी देर के बाद उत्तर दिया कि रूह आगई—उससे कुछ प्रश्न किये गये और उत्तर भी प्राप्त किये गये, परन्तु वे उत्तर उससे सर्वथा भिन्न थे जो वह जिन्दा पुरुष जिसकी रूह को उत्तर दियाजाना प्रकट किया गया था,देना-भेद खोल देने पर प्रयोग कर्त्ता गण बहुत असन्तुष्ट होकर चले गये इस दूसरे सत्र की कार्य्य प्रणाली से स्पष्ट हो गया कि कोई रूह कहीं से न आती और न आसकती है, यह केवल भ्रम ही भ्रम है भला जब एक पुरुष संघ में मौजूद है और मरा भी नहीं है, तो फिर उसकी रूह कहां सेआगई-"प्लैनचिट" की ओर से सचाई तो यह होती कि कितनी बार भी प्रार्थना करने पर उस ज़िन्दा पुरुष की रूह की न आती—परन्तु जीते जागते पुरुष की रूह के भी आजाने से रूह बुलानेकी असलियत दिनके प्रकाश की भांति खुल गई।

* "रूहें बोलती क्यों नहीं" *

इसके सिवा एक बात और भी विचार करने के योग्य है कि ये आने वाली रुहें लिखवा कर ही क्यों उत्तर दिया करती हैं, मुंह से बोलती क्यों नहीं—यदि अपनी सूरत न दिखावें, न सही, परन्तु बोलकर उत्तर क्यों नहीं दे सकतीं—जब रूहें परलोक में अन्न खाती हैं, शौच जाती हैं, वस्त्र पहनती हैं, शिक्षा पाती हैं, गुरु की देख रेख में रहती हैं,* जब वे वह परस्पर हंसी और मसखरी करती हैं+ जब वे वहां चोरी चुगली भी करती हैं ‡ जब वे वहां झूठ बोलती हैं-जब उन्हें दण्ड भी भोगना पड़ता है× जब उनकी भूतों के सदृश आवाज़ (*Ghostly Voice*) भी "चोंचों,, (*Twitter*) करने अथवा

धीमी बरबराहट ( *Thin murmur* ) की तरह होती है।+ अथवा उनकी आवाज़ आज कल के आत्मवादियों के आविष्कारानुसार, काना फूसी ( *whisper* ) की भांति है. जब उन का वज़न भी ३-४ औंस का बतलाया जाता है; तो, फिर वे

* बा० डी० ऋषि कृत सुभद्रा पृष्ठ ५६, ५७, ५६
† ,, ,, ,, ८५।
‡ बी० डी ऋषि कृत सुभद्रा पृष्ठ ७५।
× ,, ,, ,, ७३।
+ Crowley's, idea of soul p 20.

संघों में आकर क्यों नहीं बोलतीं—यहां आकर धीरे धीरे ही बोला करें, काना फूसी ही किया करें—जब उनके हाथ पांव होते हैं, तो यह तो कोई कल्पना ही नहीं कर सकता कि मुंह होता होगा—जब मुंह होता है, तो फिर उनको उसके खोलने और ज़ुबान हिलाने में क्यों संकोच करना चाहिये—जब उनके इस प्रकार चुप्पी साधने से उनकी हस्ती ही में संदेह किया जा रहा है, तब तो उन्हें मुंह खोलकर कम से कम अपनी हस्ती तो साबित ही कर देनी चाहिये। एक उर्दू के कवि ने लिखा है:—

कम बोलना अदा है हरचन्द, पर इतना—
मुंद जाय चश्मे आशिक तो भी वो मुंह न खोले *

स्वप्रेरित लेख  utiMatic writing

"मायर्स" ने इस प्रकार के लेख को, एक प्रकार का स्वयं प्रेरित कार्य्य ( A form of Motor automatism ) ठहराया है और स्वीकार किया है कि लेख प्रणाली के अभिव्यक्त बाह्य व्यवसाय से यह सिद्ध नहीं होता कि लेख से प्राप्त संदेश स्वयं लेखक के मस्तिष्क से निकले हुये नहीं हैं। हां उसने इस बात को अवश्य स्वीकार किया है कि अनेक सूरतों में सन्देश ठीक

उतरते हैं *

एक और पश्चिमी लेखक ने लिखा है कि यदि लेख प्रणाली का अच्छा खासा अभ्यास किया जावे, तो अभ्यासी लेखक निपुण बन सकता है और उसके सदेश भी ठीक उतर सकते हैं उसने एक बार इसका अभ्यास शुरू भी किया था अभ्यास इस

* Human personality by Myres Vol. I p 27

प्रकार से किया कि वह अपनी आंखें बन्द करके बैठ गया और अपने हाथमें कलमको छोड़ दिया कि जिस प्रकार चाहे कागज़ पर घूमे कलम घूमने लगा, और कुछ अनमिल बे जोड़ विचार प्रदर्शक वाक्य लिखे गये। अभ्यासकर्ता का स्वीकार है कि उस का मन बिलकुल निर्विषय नहीं था और यह भी कि जो वाक्य लिखे गये, वे उसके मस्तिष्क की भीतरी तह के प्रभावों के परिणाम थे। उसने यह भी लिखा है कि उसने केवल १० मिनट यह अभ्यास किया था। यदि वह पूरा दिन इसमें लगाता, तो शायद बहुत कौतूहलप्रद परिणाम निकलता।*

* उदाहरण *

अस्तु, यहां हम एक उदाहरण देते हैं, जो स्वयं माइर्स से सम्बन्धित है और जिससे यह बात स्पष्ट हो जायगी कि स्वयं प्रेरित लेख सदैव ठीक ही नहीं हुआ करते "माइर्स" ने एक चिट्ठी लिखी और उसको दो तीन लिफाफों में बन्द करके मुहर लगा कर एक बैंक में सुरक्षित रखने के लिये दे दी, जिस से उसका मज़मून प्रकट न होने पावे-तत्पश्चात् स्वयं प्रेरित लेख का एक सत्र संगठित किया गया कि उस चिट्ठी का मज़मून मालूम किया जावे एक "वीराल देवी" थी, जो अमल करने वाली थी-देवी ने स्वयं प्रेरित लेख के द्वारा चिट्ठी का मज़मून कागज़ पर लिख लिया और उस लेख को उन्होंने संघ

में प्रकट कर दिया, उसके बाद १३ दिसम्बर १९०४ को वह लिफ़फ़ा बैंक से मंगा कर खोला गया और चिट्ठी पढ़ी गई, तो प्रकट हुआ कि चिट्ठी का असली मज़मून और वह मज़मून

* The Belief in personal immortality by Haynes p, 94 and 95.

जो स्वयं प्रेरित लेख से प्राप्त किया गया था, एक दूसरे से असर्वथा विभिन्न थे इस लेख प्रणाली का अभ्यास वहुत सुगमता से हो जाता है। अभ्यासप्रणाली इस प्रकार है:—

* "स्वयं प्रेरित लेख का अभ्यास किस प्रकार किया जाता है" *

अभ्यास करने वाले को शान्त चित्त होकर एक मेज़ के पास बैठना चाहिए। पैन्सिल हाथ में हो और कागज़ मेज़ पर रक्खा हुआ हो। और मस्तिष्क को इच्छा शून्य रखने का यत्न करना चाहिए। पैन्सिल हाथ में इस प्रकार रखनी चाहिए, मानो यह कुछ लिखना ही चाहता है-प्रारम्भ में हाथ में कुछ कपकपी सी अनुभव होती है। तब पैन्सिल लिखने लगती है- उसके बाद लिखना प्रारम्भ हो जाता है। कुल अभ्यास में कुछेक सप्ताह लगते हैं-अभ्यास करने वालों को सप्ताह में दो बार अभ्यास करना अच्छा होता है।*

* इस मन्त्र के लेखक भी होते हैं *

ऊपर जो उदाहरण दिया गया, उससे लेख प्रणाली का अन्धेरा पहलू प्रगट होता है परन्तु बात ऐसी नहीं कि उसका एक ही अन्धेरा पहलू हो—"सर आलिवरलाज" ने अपने एक पुस्तक में अनेक उदाहरण दिए हैं, जिनसे उसका दूसरा पहलू भी प्रकट होता है। अर्थात् उसके लेख यदि कभी असत्य होते

* Automatic writing by A. Verner p. 11.

हैं, तो कभी सत्य भी उसी पुस्तक में से एक दूसरे पहलू का प्रगट करने वाला उदाहरण दिया जाता है—

* "एक दूसरा उदाहरण" *

एक बार "सटेन्टन मोसेज़" महाशय डाक्टर "स्पीर" के पुस्तकालय में बैठे स्वयं चलद् यन्त्र के अदृश्य लेखक से बात कर रहे थे।

नोट—वह अदृश्य लेखक पहले "फिन्यूइट" ( *Phinuit* ) परन्तु अब "रेक्टर" (*Rector*) अपना नाम बतलाता है-उनका एक प्रश्नोत्तर इस प्रकार है:—

मोसेज़—मुझे बतलाया गया है कि आप पढ़ सकते हैं, क्या यह ठीक है और क्या आप कोई पुस्तक पढ़ सकते हैं?

नोट—मोसेज़ अपना प्रश्न मुख से कहते थे, रेक्टर का उत्तर स्वयं चलद् यन्त्र से लिखा जाता था। मोसेज़ का कथन है कि स्वयं चलद् यन्त्र की लेख प्रणाली बदल गई, क्योंकि पहले कोई और लिखता था, अब उसका अदृश्य लेखक रेक्टर है।

रेक्टर—हां कठिनता से।

मोसेज़—क्या आप कृपा करके एनील्ड ( *Aeneild* ) के प्रथम पुस्तक की अन्तिम पंक्ति लिखेंगे?

रेक्टर—प्रतीक्षा करो-(फिर उसने लिख दिया) "*Omnibus erxantem terrisare fluctibus aestas*"

मोसेज—(यह ठीक था) ठीक ऐसा ही है...... क्या आप पुस्तक कोष्ट तक आयंगे, और दूसरे कोष्ट के अन्तिम पुस्तक के १४ वें पृष्ट का अन्तिम वाक्य पढ़ेंगे? (मोसेज़ ने लिखा है

कि उन्होंने यह प्रश्न अनायास कर दिया था। उनको मालूम भी नहीं था कि यह कौनसी पुस्तक है जिसके पढ़ने को उन्होंने कह दिया था। थोड़ी देर के बाद यन्त्र ने यह लिख दियाः—

*I will curtly prove by a short historical narrative, that Property Is a novelty. and Has gradually arisen or Grown up Since the Primitive and Pure time of christinuanety. not only Since the apostolic age but even Since the lam entable union of Kirk and state by con stantive "*

नोट—पुस्तक निकाल कर जांच करने से विदित हुआ कि रेकटर का लेख शुद्ध है, केवल एक भूल उसमें यह थी कि लेख 'Account' की जगह 'Narrative' लिखा गया था। जिस जिस पुस्तक का यह उद्धरण है उसका नाम था—"Rogers Anti fopriestian +

"लाज" महाशय ने इस यन्त्र के सम्बन्ध में अपनी सम्मति इस प्रकार लिखी हैः—"वे अवशिष्ट जीव, जो निकट भविष्यत में इस पृथ्वी पर थे और अब मर चुके हैं, कभी २ और कठिनता के साथ ऐसे मध्यवर्ती यन्त्र रचना द्वारा जो उनके अधिकार में दी जाती हैं, हम से संलाप करते हैं, यह यन्त्र रचना निमित पुरुष (माध्यम) को स्थायी रीति से अपने मस्तिष्क से काम लेना बन्द कर देता है, तब वे अविशिष्ट उससे काम लेते हैं; इस उद्देश्य से कि अपने विचार उसमें भरें, और वही उनके इस प्रकार भरे हुये विचार प्राकृतिक जगत् में संलाप अथवा लेख द्वारा प्रगट होते हैं—और अवशिष्ट जीवों का, इस प्रकार ऐसे प्राकृतिक साधनों (मस्तिष्कादि)

+ Survival of man by Sir Oliver Lodge p, 104-106.

के काम में लाने ही को, जो वास्तव में उनके नहीं हैं, स्वयं "चलद् गन्त्र" कहते हैं।*

लाज की इस सम्मति के विरुद्ध एक दूसरे विद्वान् ने इस स्वयं प्रेरित लेख का कारण इस प्रकार प्रगट किया है:—

"लघु (दूसरा) मस्तिष्क ( subjective mind ) मन्तुओं, पेशियों, हाथ और बाहु पर अपना अधिकार कर लेता और वही पैन्सिल को आगे चलाता है—इस बीच में पहला मस्तिष्क ( मन ) बिल्कुल शान्त गति शून्य और प्रायः निर्विषय-सा हुआ रहता"†—

पहले कहा जा चुका है कि चित्त में जन्म जन्मान्तर के विचार निहित रहते हैं और प्रकरण उपस्थित होने पर जागृत हो जाते हैं—चित्त का एकाग्र हो जाना इसके लिए जरूरी है, एकाग्रित चित्त को ध्यान समाधि के साथ जोड़ देने से और फिर इस सम्मिलित शक्ति को किसी अप्रगट विषय पर देने से वह विषय प्रकट और स्पष्ट हो जाता है—योग की परिभाषा में इसी का नाम संयम करना है। "मोसेज" को जो उत्तर "रेक्टर" से प्राप्त हुए असल में वे उत्तर उसी के अपने चित्त के दिए हुए थे—यदि चित्त की स्मृति-भण्डार में ज्ञान होता तो फिर अन्य अवसरों की भांति इसका उत्तर भी न मिलता:—

## ❀ मेज़ का हिलना और झुकना ❀

मेज के द्वारा भी रूहों के बुलाने की बात कही जाती है। उसका अमल इस प्रकार किया जाता है*:—

---

* Survival of man by sir Oliver Lodge p,106

† The Law of psychic phenomena by T, J. Hudson p. 252

एक गोल मेज़ लो और कुछेक पुरुष स्त्री इसके चारों ओर बैठ जावें और अपने हाथों की हथेलियों को मेज़ पर हलकेपन के साथ रखो-और प्रतिज्ञा करें कि वे किसी गति को अनुभव करने वाले हैं ;

* कम्पन का अनुभव *

थोड़ी देर में वें एक विलक्षण कम्पन अनुभव करने लगेंगे जिसका भाव इस अमल के करने वाले, यह बतला करते हैं कि यह किसी रूह के वहां उपस्थित होने की सूचना है इसके कुछ मिनट गुज़र जाने पर मेज़ के चारों ओर बैठने वालों में से कोई एक मेज से कुछ इस प्रकार कहे या पूछे मानों वह किसी व्यक्ति तको सम्बोधन करके कुछ कह पूछ रहा है—

* उत्तर देने के नियम *

प्रश्नकर्त्ता को उत्तर देने के नियम भी रूह को बतला देने चाहियें, जिससे वह प्रश्न कर रहा है वे नियम कुछ इस प्रकार के होने चाहिये कि यदि तीन बार मेज़ झुके या हिले या खटका हो तो "नहीं" यदि दो हों तो "सन्दिग्ध" यदि चार हों तो "अच्छी बात" समझी जायगी और मेज़ के इन्हीं झुकाओं या खटकों की संख्या से प्रश्न का उत्तर लिया जाया करता है मेज़

* Table Rapping and Automatic writing by A verner, E. A, I. p, page 4-6,

के चारों ओर बैठने के भी कुछ नियम नियत हैं और वे ये हैं कि एक पुरुष उसके बाद एक स्त्री फिर पुरुष और स्त्री इत्यादि कभी कभी इस नियम का अपवाद भी कर लिया जाता है— अन्धेरे कमरे में बैठ कर यह अमल करना उपयोगी समझा जाता है दोपहर के बाद सायंकाल या रात्रि का प्रारम्भ, इस अमल के करने के लिये अच्छे समझे जाते हैं।

"प्रकाश और तारों का दृश्य"

यह भी कहा जाता है कि कभी कभी अधिक अभ्यास करने के बाद अमल करने वालों को कमरे में प्रकाश, कभी कभी तारे, कभी कभी मनुष्यों के शिर आदि भी दिखाई दिया करते हैं अस्तु, इस प्रकार मेज़ के हिलने और खटकों से रूह का उत्तर समझ लिया जाता है।

"मेज़ के हिलने आदि का कारण"

परन्तु मेज़ हिलने के और खटके होने आदि का कारण मेज़ पर प्रयोग कर्ताओं के हाथ हुआ करते हैं यदि हाथ न रक्खे जावें, तो कितने ही विश्वास और श्रद्धा से क्यों न किसी रूह को बुलाया जावे, यहां कोई फटक नहीं सकता—जब मेज़ पर हाथ रख कर गति के अनुभव की प्रतीक्षा करते हैं, तभी दूसरे (लघु) मस्तिष्क के प्रभाव से हाथ में गति आती है और वही गति मेज़ के भी हिलने जुलने का कारण हो जाया करता है

* 'उज्ज्वल स्वप्न' *

पश्चिमी अध्यात्मक—वाद का एक अंग उज्ज्वल स्वप्न भी है, जिसके द्वारा उसके अनुयायी अलौकिक रीति से घटनाओं के ज्ञान प्राप्ति की सम्भावना स्वीकार करते हैं : सर अलिवर लाज ने लिखा है* कि ज्ञान तो अवश्य किसी माध्यम के द्वारा प्राप्त होता है, परन्तु उस (माध्यम) का ज्ञान हमको कुछ भी नहीं है, और किस प्रकार वह अलौकिक ज्ञान हम तक पहुंचता है, यह बात भी अभी तक अप्रकट है। सर अलिवर तथा अन्य अध्यात्मक वादियों ने इस वाद के स्थापनार्थ अनेक घटनायें उपस्थित की हैं जिनमें से उदाहरणार्थ, लाज महोदय की वर्णित, एक घटना यहां लिखी जाती है।

'एक उदाहरण'

पादरी इ. के. लियर जब अटलांटिक महासागर में एक

जहाज़ पर सफ़र कर रहे थे, जहां तारा और चिट्ठी नहीं पहुंच कर सकते थे उन्होंने १४ जनवरी १८८७ को अपनी 'दिन पत्रिका में लिखा है कि पिछली रात्रि मुझे स्वप्न आया कि मेरे चाचा एच. ई. का पत्र आया है। जिसमें मुझे मेरे प्यारे भाईकी तीन जनवरी को मृत्यु हो जाने की सूचना दी है। उससे मुझे बड़ा दुःख हुआ। मेरा भाई स्वीटज़रलैण्ड में बीमार अवश्य था, परन्तु उसका अन्तिम समाचार जो इंगलैण्ड छोड़ते समय मुझे मिला था, यह था कि अः वह अच्छा है। जब मैं अपनी यात्रा समाप्त करके इङ्गलैण्ड वापिस आया तो जैसी कि मुझे प्रतीक्षा थी, मुझे पत्र मिला जिसमें ३ जनवरी को भाई की मृत्यु हो जाने की सूचना मुझे दी गई थी+।

" survival of man by Sir Oliver Lodge p, 112
+ survival of ma by sir Oliver Lodg sp, 106&107

"इसका कारण"

इस प्रकार की घटनाओं के स्वप्न द्वारा ज्ञान होने का असली कारण परोक्ष दर्शन ( Clairvoyance ) है लघु मस्तिष्क (sub-jective mind ), कहा जा चुका है कि स्वप्न में काम किया करता है और परोक्ष दर्शन उसके अधिकारमें है। इसलिये उस को इसी दर्शनपरोक्षकी योग्यता द्वारा, इस प्रकार का ज्ञान हो जाया करता है इस ज्ञान के प्राप्त होनेमें किसी बाह्यसाधन का रत्ती भर भी, सम्बन्ध नहीं है यह अपनी शक्तियोंका अज्ञान है, जिसको वजह से हम इसका कारण बाहर ढूंढाकरते हैं—

"भूत प्रेत वाद"

भूत प्रेत की सत्ता माया के सदृश है पश्चिम के अनेक विद्वान् इसको ऐसी ही मानते भी हैं, उनका कथन है कि दृष्टि की अपूर्णता और भ्रम से मनुष्य कुछ का कुछ देखने को इन्द्र

ज्ञान (Halucination) कहते हैं कहा जाता है कि एक अंग्रेज कृषक यह देखने का अभ्यासी था कि उसके के खेत में इधर से उधर फौजी सिपाही घूमा करते हैं इसी प्रकार एक स्त्री कहा करती थी कि वह कतिपय परिचित मरे हुये पुरुषों को देखा करती है कि उसके कमरे में घूमा करते हैं दूसरे कहता है कि इंगलैंड की पार्लियामेंट के एक सदस्य को विश्वास था कि उसने पार्लिया-मेंट के एक मरे हुये सदस्य को पार्लियामेंट भवन के बरामदे में टहलते हुये देखा है जिस प्रकार दृष्टि विभ्रम से मनुष्य कुछ का कुछ देखता है इसी प्रकार श्रोत्र विभ्रम से कुछ का कुछ अथवा कुछ न होने पर भी कुछ न कुछ सुना भी करता है।* प्रोफेसर 'बेरेट" ने भूत वाद की व्याख्या इस प्रकार की है।

"एक पश्चिमी विद्वान की सम्मति'

अन्य उदाहरण भी दिये जा सकते हैं जिनसे पहले दो की भाँति यह बात प्रकट होता है कि भूतकालिक घटनायें जो विशेष विशेष व्यक्तियों पर घटित होती हैं, प्राकृतिक ढांचों अथवा स्थानों पर जिनसे उन व्यक्तियों का सम्बन्ध था कुछ इस प्रकार की अपनी छाप लगा छोड़ जाती हैं कि उनकी छाया अथवा गूंज का उन पुरुषों को अनुभव होने लगता है, जो अब वहां रहते हैं और जो [illegible] अथवा मृदु प्रकृति वाले होते हैं यद्यपि यह बात सातिशय और विश्वास के अयोग्य सा प्रतीत होता है परन्तु भौतिक विज्ञान अथवा आत्मिक खोज की सीमा में इसके अनुरूप उदाहरणों की कमी नहीं है एक सिक्के को एक कांच के टुकड़े पर कुछ काल के लिये छोड़ दो, उसके बाद हटाने पर उसका चिन्ह कांच पर रह जाता है और कांच पर के चिन्ह को व्यक्त करने से दिखाई देने लगता है लकड़ी कोयले अथवा अन्य प्राकृतिक वस्तुओं के टुकड़े फोटोग्राफी

के प्लेट पर रखने और कुछ काल के बाद हटाने से उनके चिन्ह प्लेट पर रह जाते हैं और जिस वस्तु के वह चिन्ह होते हैं, प्लेट की फोटोग्राफी के नियमानुसार विकसित करने से वही वस्तु दिखाई देने लगती है ये और इस प्रकार के अन्य दृश्यों के हेतु, भवतिक विज्ञान से प्रकट होते हैं परन्तु आत्म जगत् में

---

* Immortoity by H, P. Hayness,
† Psychic Research by *Prof*, Barret p. 197-198

---

इस प्रकार के किसी उदाहरण से यह वाद प्रमाणित नहीं किया जा सकता है।

*** एक और विद्वान की सम्मति ***

एक पश्चिमी विद्वान का कथन है दृष्ट विभ्रम से एक ओर तो भूत देखा जाता है और फिर दूसरी ओर परचित्त ज्ञान वाद द्वारा उस पर दूसरी रंगत चढ़ जाती है और इस प्रकार कल्पित भूत फिर विभ्रम का भूत नहीं रहता, किन्तु असली कहलाने लगता है। *

*** लाज इसके समर्थक है ***

सर ओलिवर लाज इस पक्ष के भी समर्थक है। उन्होंने अपने एक पुस्तक में लिखा है कि "कल्पना करो कि भूत प्रेतों की कोई प्राकृतिक सत्ता नहीं है, वह चित्त संस्कार ( Impressions ) अथवा छाया मात्र है। जो ग्राहक के मस्तिष्क में पड़ा है और जो उस संस्कार अथवा छाया के अनुरूप है जो किसी दूसरे पुरुष के मस्तिष्क में उत्पन्न हुआ है और एक तीसरे व्यक्ति द्वारा पहले के व्यक्ति के मस्तिष्क में परिवर्तित किया गया है—लाज महाशय ने अपनी इसी पुस्तक में शीघ्र मरे हुये पुरुषों की छाया ( Ohautom ) के दिखाई देने का समर्थन किया है, उन्हो

पृष्ठ ६६ पर उसी के प्रमाणित करने के लिये एक उदाहरण भी दिया है। जिसका सार यह है:—

एक उदाहरण

"मेडम मरते विर्ल्सा", जो हन्त के राजदूत की विधवा स्टाकहोलम नगर में थीं, उनसे पति के शरीर पात हो जाने पर एक सुनार ने चांदी के दाम मांगे, जो उनके पति ने क्रय की थी— मेडम को विश्वास था कि रुपया उनके पति द्वारा चुकाया जा चुका है, परन्तु सुनार को रसीद नहीं मिलती थी मेडम ने "स्वीडन बर्ग," महाशय को अपने घर बुलाया और उनसे इस कष्ट की क्षमा प्रार्थना करते हुए प्रार्थना की कि जैसा कि प्रसिद्ध है, यदि वे मृत जीवों की आत्माओं से बात चीत कर और बुला सकते हैं तो उनके मृत पति आत्मा से उस चांदीका विवरण पूछें तीन दिन के बाद स्वीडनबर्ग ने मृत पति की आत्मा से पूछकर मेडम को बतलादिया कि उनके पति का उत्तर यह है कि चांदी का रुपया चुकाया जा चुका है और रसीद उसकी ऊपर के कमरे की आलमारी में है उस पर मेडम ने कहा कि आलमारी तो साफ़ करके देख ली गई है उसमें रसीद नहीं मिली और कागज़ अवश्य हैं स्वीडन बर्ग ने कहा कि उनके पति ने बतलाया है कि अलमारी की बाईं दराज़ खोलने के बाद एक तख्ता दिखलाई देगा, उसे खींच लेना चाहिये, तब एक गुप्तकोष्ट निकलेगा उस में डचराज्य सम्बन्धी निजू पत्र हैं और अपेक्षित रसीद भी इसगुप्त कोष्ट का हाल कोई भी नहीं जानता था मेडम और अन्य पुरुष जो उस समय उपस्थित थे सब के सब ऊपर के कमरे में गये और आलमारी उपर्युक्त भांति खोली गई तो उसमें वह गुप्तकोष्ट निकला—

* Immortality by H, P, Haynes.

और उसमें बतलाये हुये कागज और वह रसीद भी निकली"
तथा ऐसे ही अन्य उदाहरणों से लाज महोदय ने इस वाद को
प्रमाणित किया है परन्तु असल में यह सब करामात अपनी
शक्तियों की है:—

वास्तविकता

परिचितज्ञान ( Telepathy) से इस प्रकार के जैसे कि मेज
के गुप्तकोष्ट का हाल अनेक गुप्त और अप्रकट बातें प्रकट हो
जाया करती हैं परचित ज्ञान का एक उदाहरण दिया जाता है:-
एक न्यूयार्क की मध्यमा ने संयुक्त-राज्य के पेटन्ट आफिस के
एक पदाधिकारी ( Exaiminer ) के सम्बन्ध में अनेक बातें
प्रकट कीं, जिनका उसे कुछ ज्ञान न था यह परीक्षण केवल
उस देवी ( मेडियम ) द्वारा परचित ज्ञानिक शक्तियों की जांच
के लिये ही किया गया था और यह भी प्रकट कर देने के लिये
कि इस प्रकार के उत्तरों के देने का सम्बन्ध किसी मृत पुरुष
की रूह से नहीं वह पदाधिकारी स्वयं वहां मौजूद था परन्तु
मेडियम और पदाधिकारी दोनों एक दूसरे से सर्वथा अनभिज्ञ
थे, यहां तक कि एक को दूसरे के नाम तक का ज्ञान न था—
और जब वहाँ परस्पर एक दूसरे का परिचय कराया गया तो
वह भी कल्पित नामों से पदाधिकारी के सम्बन्ध में मेडियम
को कुछ बतलाना था, सब ठीक हो जाने पर मेडियम ने कहना
शुरू किया: —

"मैं एक बड़ी इमारत देख रही हूं, जिसमें अनेक कमरे हैं,
इन्हीं कमरों में से एक में, मैं तुमको देखती हूं तुम एक बड़े
डेस्क के सामने बैठे हो जिस पर बहुत से कागज फैले हुये हैं
मैं पैडेस्क के दरवाजों को भी देखती हूं, मुझे ऐसा जान पड़ता

—Survival of man by sir Oliver Lodge p, 78

है कि तुम पेटन्ट के स्वत्वों से सम्बन्धित कुछ काम करते हो-परन्तु तुम्हारा यही एक काम नहीं मैं तुमको तुम्हारे घर के पुस्तकालय में भी देखती हूँ, जिसमें बहुत से पुस्तक और हस्तलिखित पुस्तक ( manuscripts ) भी हैं ऐसा मालूम होता है कि तुम एक पुस्तक भी लिख रहे हो ( इसके बाद मेडियम ने लाइबरेरी की अलमारियों तथा सामानें की तफसील भी बतला दी और उसके बाद कहा कि ) "और पुस्तक के विषय के सम्बन्ध में जिस परिणाम पर तुम पहुचे हो, उसे भी मैं देखती हूं।"

**पदाधिकारी**— क्या वह परिणाम ठीक है ?

**मेडियम**—"यह मैं नहीं बतला सकती, क्योंकि मैं उस (पुस्तक के) विषय से अनभिज्ञ हूं ( इसके बाद मेडियम ने पुस्तक तय्यार करने में जिससे सहायता ली जा रही थी उसका भी हाल बतलाया इत्यादि। *

उदाहरण से स्पष्ट है कि किस प्रकार मेडियम ने अपनी अभ्यस्त परचित्त ज्ञानिक शक्ति से पदाधिकारी का समस्त हाल बतला दिया, यहाँ तक कि लेखान्तर्गत पुस्तक का परिणाम भी बतला दिया अपनी शक्तियों से अनभिज्ञ नर नारी इसको भी किसी रूह का काम ही बतलाते, परन्तु ये सब परचित्त ज्ञानिक शक्ति के विकास का परिणाम हैं:—

रूहों का फोटो लेना

पश्चिमी अध्यात्मवादका एक अंग जो अत्यन्त विवादास्पद है, रूहों का फ़ोटो लेना ( *Spirit Photography* ) है—थोड़े

---

* The Law of psychic phenomena by Hudson p, 244 226,

से अध्यात्मवादी इस क्रिया पर पूरा पूरा विश्वास रखते हैं, परन्तु अधिक संख्या में इसके विरोधी हैं-इस क्रिया का कुछ रूप जाना जासके, इसके लिए उदाहरण दिया जाता है:—

सर आर्थरकोनन डोयल ( sir Arthur Conon Doyle ) ने स्वयं इस फोटोग्राफी का परीक्षण करके उसका उल्लेख इस प्रकार अपनी एक पुस्तक में किया है* डोइल का कथन है कि "१६१६ की ग्रीष्म ऋतु में, इसी परीक्षण के लिये पहले से नियत किये हुये समय पर, क्रियू ( Crewe ) गये म० आटन (mrouten) सम्पादक 'टू वर्ल्ड्स' (Two wo,les) और वाकर ( mr, walker )दो अध्यात्मवादी मेरे साथ थे होप और देवी बक्सटन ( *Mr* Hope and Mrs Buxton ) माध्यम हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे भेंट होने पर एक संक्षिप्त धार्मिक कृत्य के बाद होप और मैं एक अन्धगृह ( Dark Room ) में गये ,वहां पहुँच कर मैंने प्लेट का पैकट खोला, जो मैं मानचेष्टर से खरीद करके साथ ले गया था। और उनमें से दो प्लेटों पर चिन्ह करके कैरियर ( Cairier = Dark slide ) में रख दिया। तब कैरियर को होप ने कैमरा ( Camera ) में लगा दिया। और हम तीनों अध्यात्मवादी एक कम्बल का पीछे से साया करके बैठे-तब परदा खोला गया और कैरियर फिर अन्धगृह में पहुँ-चाया गया वहां मैंने स्वयं अपने हाथों से उन प्लेटों को निकाला और उन्हें व्यक्त (Develop) किया और जहां तक मैं अनुभव कर सकता था,इस सब कार्यमें प्लेटोंके बदले जानेका कोई मौका न था। फोटो जो इस प्रकार खींचा उसकी हालत यह थी, कि हमारे चारो ओर गहरे बादल थे और एक गोसे में एक नव

* The case for spirit photography by sir A, C Doyle p, 18 & 19·

युवक का चेहरा और उसके बाल थे और चित्र पर यह इबारत लिखी थी—

"Well dohe, friend, doyle, I welcome you to crewe, Greetings to all.T,colley. ) अर्थात् टी० कौले की ओर से मेरे नाम संदेश था, जिसमें लिखा था कि "मित्र डाइल! आप ने बहुत अच्छा किया, मैं क्रियू में ( आने के लिये ) स्वागत करता हूं, सबको नमस्कार" यह कौले महाशय इस "क्रियू सरकल" ( Crewe circee ) के संस्थापक थे और संदेश के अक्षर कौलेके अक्षरों में मिलते थे।"

❀ इसकी असलियत ❀

डोइल ने उपर्युक्त विवरण अपने एक परीक्षण का देकर दावा किया है कि रूहों के फोटो लेने की बात ठीक कही है— परन्तु जो इस क्रिया के विरोधी हैं, उनका कहना यह है कि ये माध्यम लोग पेशावर होते हैं और उन्हेंने अपनी रोज़ी कमाने का यह ढंग निकाल लिया है और अपने काममें इतने होशियार होते हैं, कि इतनी सफाई से प्लेटों को बदल लिया करते हैं कि अपरिचित पुरुषों को उसका ज्ञान भी नहीं होने पाता और यह कि ये लोग जो फोटोमें बादलोंके चिन्ह दिखलाया करते हैं, ये चिन्ह ऊन ( Cotton wool ) का अक्स होता है, जो सामने रखने से प्लेटपर पड़ा करता है। यह विरोध स्वयं एक प्रतिष्ठित अध्यात्मवाद के संघ ( society for *Psychic* Research ) की ओर से हुआ था इस संघ ने इस क्रिया की सचाई जानने का यत्न किया संघ के अग्रणी प्राइस महाशय ( Mr *Price* ) ने आध्यात्म होप के साथ पत्र व्योहार करके परीक्षण का समय नियत कराया नियत समय पर प्राइस नियत स्थान पर पहुचे उन्होंने अपने साथ ले जाने के लिये❀ एक कम्पनी से प्लेट खरीदे और उनमें

❀ Imperial *Dry* plate Company

खुलजाने से एक महाशय डिंगवाल [*Mr* Dingwali] ने भी सन् २२ के मई मास में, होप से परीक्षण करने का समय नियत करने के लिये लिखा, परन्तु होप ने परीक्षण कराने से इन्कारकर दिया था। † तब उपर्युक्त परीक्षण का विवरण उपर्युक्त साईकिक सङ्की कार्य्यवाही में सम्मिलित करके प्रकाशित करदिया गया। माध्यम होप के लिये यह भी कहा जाता है कि वह अन्धगृह में बराबर बेचैनी के साथ इधर उधर दौड़ धूप में व्यग्र रहा करता है। उसकी यह बात भी सन्देह योग्य बतलाई जाती है और कहा जाता है कि माध्यम को अन्धगृह में क्यों जाना चाहिये। सब काम परीक्षण कर्ता द्वारा ही क्यों नहीं कराये जाते ?

❀ दूसरी माध्यम डीन का हाल ❀

यह तो हुई एक माध्यम (होप) की बात, अब दूसरी माध्यम देवी डीन (Mrs Deane) की बात सुनिये यह देवी जो

---

❀*The* case for spirit photography by mr. Doyle y. 41.

†The case for spirit photography by mr. Doyle p. 44.

---

खुले तौरसे प्लेटोंको परीक्षण दिवससे कुछदिन पहले अपने पास मँगवा लेती है पीछे से अदलने बदलने का झगड़ा ही नहीं रखती और कहती है कि प्लेटों को वे चार पांच दिन अपने पास रख कर उन्हें आकर्षण शक्ति युक्त (*Magnetising*)कर देती है इसका परिणाम यह है कि परीक्षण करने वाले सन्तुष्ट नहीं होते हैं और समझने लगते हैं कि इस फ़ोटोग्राफ़ी में कुछ चालाकी ज़रूर होती है—

"तीसरे माध्यम वीर्न कोम्बे का हाल"

तीसरे माध्यम वीर्न कोम्बे ( ***Mr. Vearn Combe*** ) महाशय एक साधारण फ़ोटोग्राफ़र से रूहानी फ़ोटोग्राफ़र बने

हैं डोइल का कहना है कि उसने दोबारा इनके द्वारा परीक्षण किये परन्तु दोनों बार परीक्षण असफल हुये एक परीक्षण की बात उसने इस प्रकार लिखी है‡—

"एक चीट्ठी को लिफ़ाफे में बन्द करके मैं ( Doyle ) ने वीर्न कोम्बे के पास इसलिये भेजी कि पत्रका फोटो लेवे, परन्तु पत्र का फोटो आने की जगह छै सात चेहरों का फ़ोटो खिंच गया यही हाल दूसरे परीक्षण में भी हुआ वीर्न कोम्बे की चालाकीका हाल एक बार इस प्रकार मालूम हुआ कि कतिपय सज्जनों ने एक मुहर किया हुआ पैकट् वीर्न कोम्बेके पास भेजा और कहला भेजा कि जो कुछ वह उसके सम्बन्ध में कर सकता है,करे परीक्षणके बाद पैकट परिणामके साथ वीर्नकोम्बे ने उन सज्जनोंके पास लौटा दिया पैकटखोलने और देखने के बाद उन लोगों ने घोषणा की कि पैकट में कुछ अदल बदल करदी

❀ The case for spirit photography . 54

† The case for spirit photography p.57

गई है इसका परिणाम यह हुआ कि वीर्न कोम्बेकी मान हानि हुई और ख़ास सूरतों के सिवा उसने रूहों के फ़ोटो लेने के परीक्षण सर्व साधारण के सामने करने छोड़ दिये—

❀ रूह की फोटो लेने की बात मिथ्या है ❀

इन परीक्षणों और माध्यमों की चालाकियों पर दृष्टि डालने से प्रत्येक समझदार आदमी इसी नतीजे पर पहुँचता है कि रुह के फ़ोटो लेने की बात सर्वथा मिथ्या हैं इसी परिणाम पर स्वयं लेडन के साइकि संघ को पहुंचाना पड़ा, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है इसके सिवा फ़ोटो स्थूल शरीर का खिचा करता है, जब रूहें स्थूल शरीर रहित होती हैं, जैसा कि

रूहों के व्यवसाई कहा करते हैं, तो फिर किस चीज़ का खिंच सकता है ? समझदार आदमियों को इसका भी विचार करना चाहिये।

✽ The case for spirit photography p, 58—59,

## ✽ "तीसरा परीच्छेद" ✽

### ✽ परचित्तज्ञान Telepathy ✽

एकचित्त के दूसरे चित्त पर,† उन साधनों से जिनका ज्ञान इस समय तक विज्ञान को नहीं है, कार्य्य करने को "परचित्त ज्ञान" कहते हैं ‡ माइर्स की सम्मति है कि मानुषिक मस्तिष्क का बड़ा भाग अप्रकाशित है और वह अप्रकाशित भाग न केवल अपनी किन्तु पूर्वजों की भी स्मृतियों का पुंज है। इसी को उसने उत्कृष्ट चेतना का नाम दिया है। माइर्स का यह वाद समुयेल बटलर ( *Samuel Butler* ) के अज्ञात स्मृतिवाद से मिलता जुलता है

### ✽ माइर्स की सम्मति ✽

माइर्स ने इस बात का विवरण इस प्रकार दिया है‡। वर्षों से यह बात अधिक और अधिक मात्रा में सोची और समझी जाती रही है कि किस प्रकार एक व्यक्ति का जीवन पूर्वजों के अनुभवों का अज्ञात परिवर्तन युक्त, विषम रूप है। जन्म से लेकर मरण पर्य्यन्त रंग रूप, कार्य और प्रकृत आदि में हम

† अर्थात् दो जीवित पुरुषों के चित्त में बिना किसी बाह्य और ज्ञात साधन के विचार परिवर्त्तन की विधि परचित्तज्ञान ( Telepathy ) कहलाती है।

† Human personality by Mayers Vol.1 p.16

उन्नत जीवनो का जो पृथ्वी पर करोंड़ों वर्ष से प्रादुर्भूत होते रहे हैं रूपान्तर हैं। निरन्तर त्रिस्तृत परिस्थति के साथ सम्बन्धित होने से क्रमशः चेतना का द्वार अपना स्थान छोड़ता सा गया, जिसका प्रभाव यह हुआ कि चेतना की वह धारा जो एक बार हमारी सत्ता के मुख्य भाग में प्रवाहित होती थी, अधिकतया बन्द सी हो गई। हमारी चेतना विकास के एक दर्जे पर पहुँचे हुये आसार(संसार)समुद्रमें एक लहरके सदृश है और लहरहीके सदृश वह न केवल बाह्य सत्ता रखती है, किन्तु अनेक तहों वालीभीहै हमारा आत्म संयोग न केवल सामयिक संघात है, किन्तु स्थिर भी है और चिरकालीन अनियमित विकास का परिणाम है। और अब तक भिन्न भिन्न अवयवोंके समित श्रमसे युक्त है।"

मस्तिष्क का ठीक ज्ञान न होने से मस्तिष्क के नाम अथवा काम से सम्बन्धित जो बात भी कही जाती है, कोई दूसरा पुरुष जो उस बात को न भी मानता हो निश्चत रीति के उसका प्रतिवाद नहीं कर सकता। यही हेतु है, जिससे परिचित्त ज्ञान सम्बन्धी विश्वास पश्चिम में बढ़ रहा है। इस विषय से सम्बन्धित अनेक पुस्तक जिनमें परचित्त ज्ञान के परीक्षणों का उल्लेख है, प्रकाशित हो चुके हैं। उन्हीं के आधार पर दो एक परीक्षण यहां लिखे जाते हैं। बैरेट की पुस्तक † में एक घटना जो इस बाद की पोषक है, अंकित है, और वह इस प्रकार है।

❀ एक उदाहरण ❀

फरवरी १८९१ ई० में एक अमेरिकन कृषक घर से १०० मील की दूरी पर "डूबक" नाम वाले नगर में अचानक मर गया। पुराने वस्त्र जो पहन रहा था, वहीं फेंक कर उसका पुत्र शवको घर ले आया। अपने पिताका दुःखदाई मृत्यु समा-

† Psychical Research by Prof. Barret P 130.

चार सुनकर उसकी पुत्री बेहोश हो गई और कई घण्टे उसी अवस्था में पड़ी रही। जब उसे सुध हुई तो उसने कहा "कहां हैं पिता के वस्त्र ?" मेरे पास आये थे सफेद कुर्ता और अन्य काले वस्त्र और सैटिन के सलीपर पहने हुये थे। उन्होंने मुझ से कहा कि घर छोड़ने के बाद बिलों की एक लम्बी सूची तय्यार करके उन्होंने जेब में रखली थी जो अपने खाकी कुर्ते के भीतरी लाल कपड़े के टुकड़े से सिली थी, और रुपया भी उसी में है दफन करते समय जो वस्त्र शव ( लाश ) को पहनाये गये थे, वे वही थे, जिनका विवरण लड़की ने दिया था। और लड़का को इन वस्त्रों के पहनाने का कुछ भी ज्ञान न था। इसके सिवा कुर्ते के भीतर वाली जेब और रुपयों का हाल उसे और न अन्य किसी को मालूम था। लड़की को सन्तुष्ट करने के लिये उसका भाई "डूबक" गया, जहां उसका पिता मरा था। वहां उसने पुराने वस्त्र पाये, जो एक छप्पर में रक्खे थे। कुर्ते की भीतरी जेब में वह लम्बी सूची भी बिलों की मिली, जो ३५ डालर के थे, और उसी प्रकार लाल कपड़े के टुकड़े से सिले थे जैसा लड़की ने बतलाया था। जेब के टांका बड़े और अनियमता से लगे हुये थे, जैसे किसी पुरुष ने सिये हों"। प्रोफेसर बैरेट ने इस घटना के आधार पर "परचित ज्ञान" की सत्यता पर विश्वाश किया था! मेइर्स ने भी इस घटना का सविवरण उल्लेख करते हुये इस वाद की पुष्टि की है+ एक दूसरे परीक्षण का भी उल्लेख किया जाता है। यह परीक्षण सर आलिवर लाज ने किया था और उन्होंने ही अपने एक पुस्तक में अंकित किया है। परीक्षण का विवरण इस प्रकार है।

---

+ Human personality vol. II p 39 by Meyers

### ❀ एक और परीक्षण ❀

दो पुरुष अपने विचार, एक तीसरे पुरुषमें जिसकी आंखें अच्छी तरह कपड़ेसे बांधदी गई थीं, पहुँचानेके लिए बैठे। एक मोटे कागज़ की एक ओर एक शक्ल बर्गाकार इस इस प्रकारकी बना दी गई थी और कागज़ की दूसरी ओर दो रेखायें † इस प्रकारकी खींचदी गई थीं। वे दोनों पुरुष एक मेज़पर आमने सामने बैठे और दोनों के बीचमें वह कागज़ इस प्रकार रक्खा गया था कि एक पुरुष अपने ओर वाले चित्र को और दूसरा अपने ओरवाले चित्रको देखता रहे परंतु उन दोनों कोभी यह जाननेका अवसर नहीं दिया गया था कि—कागज़ की दूसरी ओर क्या है? तीसरे पुरुष को जो "ग्रहणक्षम" था, और जिसकी आंखों से पट्टी बंधी थी, वहीं मेज़ के पास बिठलाया गया और तीनोंके बीचमें दो फुटका खुला अन्तर रक्खा गया था। दोनों पुरुष अपने २सामनेकेचित्रोंको संलग्नताके साथ इस विचारसे देखने लगे किउन्हें "ग्रहणक्षम"ने इस प्रकार कहना शुरू किया:-

"कुछ हिल रहा है और मैं एक चीज़ को ऊपर और दूसरी नीचे देख रहा हूँ। साफ़ २ दोनोंको नहीं देख सकता" तब वह कागज़ जिसपर चित्र खिचे थे छिपा दिया गया और 'ग्रहणक्षम' की आंखों से पट्टी खोल कर कि जो चीज़ उसके विचारमें आई थी, उन्हें कागज़ पर लिख देवे, उसने एक चित्र इस प्रकार का खींच दिया" लाज का कथन है कि यह परीक्षण अनेक पुरुषों की उपस्थित में किया गया था। उन पुरुषों में कुछ एक वैज्ञानिक भी थे। और यह कि परीक्षणने सफलता से सिद्ध कर दिया कि एकही समय में

† The survival of mau by Sir oliver Lodge p, 28 29
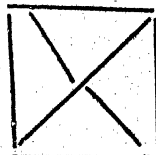
न केवल एक किन्तु दो पुरुषों के विचार भी एक तीसरे पुरुष में डाले जा सकते हैं। सर आलिवरलाज ने यह भी लिखा है कि—वैज्ञानिक होने की हैसियत से वे इस परचित्त ज्ञान का कोई हेतु नहीं दे सकते, सम्भव है कि इसका सम्बन्ध ( ईथर ) आकाश से हो। यदि यह सिद्ध होगया, तो अवश्य यह बात भौतिक विज्ञान की सीमा में आ जावेगा।

❀ 'वैज्ञानिक हेतु' ❀

लाज ने इसके वैज्ञानिक हेतु देने का यत्न किया है, और वह इस प्रकार है †। 'एक दर्पण को एक अक्षाग्र ( धुरी ) में इस प्रकार जड़दो कि जिससे वह कुछ हिल जुल न सके। उससे कुछ दूरीपर फ़ोटोग्राफ़ी का काग़ज़ और उसी का मध्योन्नति काँच रक्खो यदि सूर्य्य की किरणें आइने पर पड़ेंगी और काग़ज़ आदि सब व्यवस्था के साथ रक्खे हुए होंगे, तो परिणाम यह होगा कि उस काग़ज़ पर एक रेखा खिंच जायेगी और इसी प्रकार प्रत्येक खटके से जो दर्पण को दिया जायेगा रेखा खिंचती जायेगी। सूर्य्य और उस दर्पणके मध्यमें कोई तार अथवा अन्य इसी प्रकार का कोई प्राकृतिक माध्यम, सूर्य की किरणों और आकाश ( ईथर ) के सिवाय, नहीं है। इसी प्रकार दो मस्तिष्कोंमेंसे जिनमें आनुरूप्य सम्बन्ध हो और जो एक दूसरे से पृथक् हो, एक को उत्तेजना देने से दूसरा प्रभावित होगा' आनुरूप्य सम्बन्ध का तात्पर्य्य भौतिक विज्ञान में लाज के कथनानुसार, यह है कि—रेल के स्टेशनों पर सिगनल देने के लिए जो खम्भों में हाथ लगे होते हैं और इसी पर लगे हुए एक दूसरे यन्त्र के हिलाने से जिस प्रकार ऊपर या नीचे करने के लिए उसे हिलाते हैं, इसी प्रकार का

† Survival of myn by sir Oliyer Lodge p- 61 64

अभाव वह यंत्र की गति उस हत्थे में उत्पन्न कर देती है और उसी प्रभाव के अनुसार वह नीचे या ऊपर हो जाता है, तो उस यन्त्र से और हाथमें समझा जायेगा कि आनुरूप्य सम्बंध है, यह हिलाने का खटका जो उस यन्त्र से हत्थे तक पहुंचता है और जिसका माध्यम लोहे की शृंखला अथवा कोई रस्सी होती है, एक सैकिंड में तीन मील की चाल से जाता है। सर आलिवरने अपने पुस्तकमें यह भी लिखा है() कि इङ्गलैण्ड और हिन्दुस्तान का अन्तर आनुरूप्य सम्बन्ध में बाधक नहीं हो ;सकता। जिस प्रकार इङ्लैएड में तार की मशीन खटखटाने से तिहरान की मशीन प्रभावित होकर वैसा ही खटका पैदा कर देती है, इसी प्रकार मानसिक विचार परि-

()Survival of man by sir Oliver Lodge p, 70and71

वर्तन इङ्गलैएड और हिन्दुस्तान के बीच ऐसे साधनों से, हो सकता है, जो इस समय तक ज्ञात नहीं हुए हैं"।

❀ "परचित्त ज्ञान की वास्तविकता" ❀

परचित्त ज्ञान और परोक्ष दर्शन (clairvoyance) यही दो शक्तिया हैं, जिनके स्वीकार करने में कुछ भी हिचिर मिचिर करने की ज़रूरत नहीं है और रूहों के बुलाने का सभी मामला इनके समझ लेने से समाप्त हो जाता है—संघ का समय समाप्त हो चुका था इसलिए आत्मवेत्ता ऋषि ने संघ का कार्य्य समाप्त करते हुए कहा कि—अभी कुछ बातें इस विषय में बाकी रह गई है। वे अगले संघ में कही जावेंगी—संघ में उपस्थित नर-नारी यह सोचते हुए चलने लगे कि—जगत् रचयिता ने मनुष्यों के भीतर कैसी २ अपूर्व शक्तियां भर दी हैं, परन्तु दुर्भाग्य वाले हैं हम सब कि उनसे न काम लेते न उनके जानने की चेष्टा करते हैं और अनेक भ्रम जालों में

फँस रहे हैं—उन्हीं नर नारियों में से एक पुरुष ने उद्बोधनार्थ एक भजन गाना शुरू किया और सभी शान्ति के साथ उसे सुनने लगेः——

* भजन ( १ ) *

अब तो अबुध आलसी जागो ॥ टेक ॥

उदित भयो विज्ञान-दिवाकर मन्द मोह भागो। डूब गयो दुर्जन तारागण वृन्द विषय रस पागो ॥ अब तो अबुध० साहस सर में कर्म कमल बन अब फिर फूलन लागो। प्रेम-पराग हेतु सज्जन कुल भृङ्ग-यूथ अनुरागो ॥ अब तो० ॥ २ ॥ सुख सम्पत्ति चकवा चकई ने मिल वियोग दुःख त्यागो। जाय दुरो आलस उजाड़ में दैव उलूक अभागो ॥ अब तो० ॥ ३ ॥ सकल कला कौशल चिड़ियों ने राग "कर्ण" प्रियरागो। हिल मिल गैल गहो उद्यम को पीछे तको न आगो ॥ अब तो० ॥ ४ ॥

* भजन-२ *

उठरी वाले ! अब तो जाग । भोर भई है, निद्रा त्यागो ॥
उठरी सजनी ! बीती रजनी । बोल रहे चिड़ियाँ औ काग ॥
निकली किरणें सुरजन जागे। जाग उठा तब सप्त सुहाग ॥
प्रातःकाल भजन कर प्रभु का। जिससे हो प्रिय से अनुराग ॥

* "चौथा परिच्छेद" *

।" दसवाँ संघ "

## रूहों का बुलाना।

* "प्रारम्भ" *

संघ का समय निकट भविष्यत् ही में आनेवाला है। इस-

लिए अनेक नर-नारी संघ में जाने के लिए सन्नद्ध हैं–उनके हृदयों में एक विलक्षण भाव उत्पन्न हो रहा है। जब वे अपनी ओर देखते हैं, तो अपने को अनेक चिन्ताओं की चपेटों से कम्पित, विवेक शून्य, कर्तव्य विमूढ़-सा पाते हैं. रोमांचकारी कुप्रथाओं के निन्दनीय आतङ्क वश अनेक यातनायें भोगते हुए देखते हैं, हृदय उद्वेग से विह्वल है और दुःखमय आन्तरिक क्षोभ से व्यथित हैं, सोचते हैं कि कब और किस प्रकार यह धर्म ध्वंसिनी मोह निद्रा विदूरित होगी और कब उनके हृदय, धर्म भावोत्पन्न होंगे और कब आत्मत्याग पूर्वक निर्भीक चित्त से सदाचार के सुपथ में पदविन्यास कर सकेंगे परन्तु जब संघ के विलक्षण प्रभाव का स्मरण करते हैं कि अनेक माई के लाल अपनी कमनीय आलोकमाला के विकीर्ण करने के लिए उसी के अलौकिक प्रभाव से, प्रभावित हो कर अग्रसर हो रहे हैं और अनेक आज्ञानान्धकार शमन करने में समर्थ हो चुके हैं और उसके साथ ही जब ऋषि आत्मवेत्ता का स्मरण करते हैं कि उनकी अनुपम शिष्टता, मितभाषिता, गम्भीरता, सुशीलता, और मिष्ट भाषण किस प्रकार चिरसंचित कुसंस्कारों के दूर करने के लिए तीव्र शस्त्र का काम कर रहे हैं और किस प्रकार उनका अलौकिक स्नेह सम्पन्न हृदय, उच्च और उदारता व्यञ्जक ललाट, गम्भीर और उज्ज्वल मुख मण्डल अगाध शोक सागर में पतित पुरुषों को भी, सुख और शान्ति के कल्याण मार्ग का पथिक बना रहा है, तो हृदय आशा और उत्साह से पूरित हो उठता है, इस प्रकार के दुरुखे विचारों की लहरों में, बहते हुए नर-नारी वेग के साथ संघ की ओर चले जा रहे हैं। आश्रमकी पवित्र भूमि आ गई देखते ही देखते ऋषि आत्मवेत्ता संघ में उपस्थित होकर वे और उनके साथ ही सभी उपस्थित स्त्री-पुरुष यथा स्थान बैठ गये।

**आत्मवेत्ता**—रूहों के बुलाने के सम्बन्ध में जो प्रयोग किये जाया करते हैं, उनका वर्णन आवश्यक आलोचना के साथ किया जा चुका है। दो बातों का व्याख्यान करके तब शंकाओं के करने का अवसर दिया जावेगा।

❀ 'रूहों के बुलाने और सन्देश लेनेके लिए विश्वास क्यों आवश्यक है" ❀

उनमें से पहिली बात तो यह है कि रूह बुलाने का प्रयोग करने वाले कहा करते हैं कि यदि उनके आने और सन्देश देने में विश्वास न हो, तो रूहें बुलाने से भी न आती और न संदेश देती हैं। कल्पना करो कि एक संघ रूहों के बुलाने के लिये लगा है। कार्य प्रारम्भ होने से पहले यदि कोई सन्देह वादी बन कर निराशा के साथ कह दे कि "यह सदैव होता है कि जब मैं मौजूद होता हूं, तो न तो कोई रूह आती है और न सन्देश देती है"—तो बहुत कम सम्भावना बाकी रह जायगी कि रूह आवे। अथवा अमल करने वाले, जो प्लैनचिट या मेज़ पर हाथ रख कर बैठा करते हैं और जो रूहों के बुलाने में पूरा विश्वाश रखते हैं, रूहों के बुलाने में सफलता प्राप्त कर सकें। विचारणीय यह है कि विश्वास न होने पर रूहों का आना क्यों बन्द हो जाता है? जब रूहों को, उनके बुलाने वालों के कथनानुसार, मेज़ के हिला देने की ताकत है-प्लैन-चिट को गति में ला देने की योग्यता है-हज़ारों मील सफ़र कर लेने की शक्ति है और इसी प्रकार अन्य भी अनेक प्रकार के काम कर सकने का सामर्थ्य है, तो इसका कोई कारण प्रतीत नहीं होता कि एक अविश्वासी के सम्मुख उनकी सारी शक्तियां क्यों रुख़सत हो जावें? उनको चाहिये तो यह था कि अवि-श्वासियों को विश्वासी बना देने के लिये और अधिक अपनी

सर्वथा विपरीत है - हडसन ने खूब लिखा है कि नैपोलियन जब जिन्दा था, तो सारा योरुप उसका नाम सुन कर ही थर थर कांपने लगता था, वह योरुप के राजाओं को कठपुतली की तरह नाच नचाया करता था। परन्तु जब मर गया, तो उसका रूह का यह हाल कि उसके सामने आने तक से हिचकिचाती है, जिसे रूह के बुलाने आदि का विश्वास नहीं है। ❋

❋ इसका असली कारण ❋

इसका असली कारण यह है कि रूह तो कहीं से न आती है और न जाती है। जो कुछ कृत्य हुआ करते हैं, वे अपने ही लघु मस्तिष्क ( *Subjective mind* ) के कार्य होते हैं और वह स्वयं प्रस्ताव ( *Auto Suggestion* ) से प्रभावित किया जाता है–परन्तु मनुष्य को यदि सन्देह हो, तो स्वयं प्रस्ताव से प्रभावित होने को अवस्था उत्पन्न ही नहीं हो सकती और इसीलिए कोई कार्य भी नहीं हो सकता। इस बात से भी स्पष्ट होता है,कि यहां रूहोंके बुलाने आदिकी बात सर्वथा मिथ्या है।

❋ रूहों के बुलाने आदि मे छल कपट का बाहुल्य ❋

दूसरी बात जिसकी इस समय चरचा करनी है, यह है कि रूहों के बुलाने के परीक्षण, परीक्षण की हद से निकल कर तमाशा दिखलाकर धन कमाने के संघों में परिवर्तित होगये हैं और इसलिए इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि इन संघोंमें छल कपटका समावेश होगया। इसका कुछ जिक्र फोटो लेने के प्रकरण में किया जा चुका है और कुछ यहां किया जाता है:–

(१) मैस-के-लाइन (*Maskelyne*) और डेवेन्ट ( Devant ) दो विद्वानों ने जिन्हें रूह बुलाने के एक संघ में अनेक बातें

---

❋ *The Law of psychic phenomena by Hudson* p. 209 and 210.

दिखलाई गई थीं उसी संघ में उन्होंने सब बातों को दुहरा कर दिखला दिया और प्रकट कर दिया कि इन बातों में किसी या किन्हीं रूहों का कुछ भी दख़ल नहीं है। ×

( २ ) टुकेट एक विद्वान् ने एक रूह बुलाने वाले पेशेवर इन्द्रजाली का उदाहरण दिया है, जिसने १८७७ ई० में बरनल के एक संघ में यह स्पष्ट कह दिया था कि रूह बुलाने के संघों में जो घटनायें घटित होती हैं उनकी वह सकारण व्याख्या नहीं कर सक्ता। *

( ३ ) स्लेड और होम ( Slade and Home ) ने, जो रूह बुलाने का अमल किया करते थे इन संघों में जो छल और कपट किये, वे प्रायः सब पर प्रकट हो गये और उसका परिमाण यह हुआ कि इन संघों से लोगों को नफरत होने लगी। ‡

नोट—इन लोगों के अनेक एजेन्ट थे जो इन स्थानों के जहां संघ होने वाले हुआ करते थे एक एक घर का सब हाल जान कर इन्हें बतला दिया करते थे इस काम के लिये लोगों ने एक भाषा भी गढ़ली थी, जिसे कोई दूसरा, जो इनकी गुट्ट से बाहर हो, नहीं समझ सकता था।

( ४ ) एक बात जो इन संघों में आम तौर से मेडियम किया करते हैं, और जो सब को सन्देह में डालने वाली हुआ करती है, यह है कि ये रूह बुलाने के संघ प्राया बिलकुल अंधेरे या

---

× The Belief in personalimmortality by E, S. P. Hayness. ( Chapter on spiritism )

† The Belief in personal immortality by E. S. P. Hayness,( Chapter on spiritism )

* The Belief in personal immortality by E. S. P, Hayness, ( Chapter on spiritism )

धुंधले प्रकाश में किये जाया करते हैं और मेडियम को परदे में इधर उधर घुमाना पड़ता है, जब कि यह बात भली भांति जानी हुई रहती है कि मेज के चारों ओर जो आदमी खड़े किये जाते हैं उनको एक दूसरे का हाथ छोड़ने और मेज के पास से हटने की इजाज़त नहीं होती।

( ५ ) डाक्टर एलफ्रेड रसल वालेस रूह बुलाने के समर्थक थे, तो भी उन्हों ने लिखा है कि एक संघ में उन्होंने एक बुलाई हुई स्त्री की रूह के कान. यह देखने के लिये छूना चाहा कि बालियां पहनने के लिये छिद्र हैं या नहीं, परन्तु इस और ऐसे ही अनेक परीक्षणों में देखा गया है कि कभी ऐसा अवसर नहीं आया, जिसमें आई हुई रूह पकड़ी गई हो। हां यह तो अनेक बार हुआ कि रूह के बदले मेडियम का शरीर हाथ में आ गया हो। †

( ६ ) पाडमोर ने लिखा है कि इन रूह बुलानेवालोंका एक बड़ा संगठन होता है, जिसका उद्देश्य यह होता है कि आवश्यक सूचनायें प्राप्त करते रहें और इस प्रकार एकत्रित सूचनाओं से संगठन के समस्त सदस्यों को वाक़िफ करते रहें। *

( ७ ) रूह के बुलाने का अमल करने वाली दो बहनों के सम्बन्ध में जो किसी फौक्स ( Fox ) नामक पुरुष की लड़किया थीं, छल कपट का सन्देह हुआ। अन्त में दो भिन्न भिन्न अवसरों पर दोनों ने अपनी चालाकी स्वीकार की और बतलाया कि वे अपनेही घुटने और उँगलियां चटखा कर आवाज पैदा कर दिया करती थीं (Their rappings were produced

---

† My life by Dr. A. R. Wallace p, 347 (vol. 11)

* Modern spirtism by Padmore vol. 11 P. 399 (foo tnote

by Cracking the Knee and toe joints )†

)८) हिल ( J. A. Hill ) एक विद्वान् ने लिखा है कि रूह बुलाने वालों में इतना छल कपट ( Fraud )और इतनी अधिक अन्ध-विश्वासता ( Excessive Credulity ) होती है कि जिस से मुझे इतनी घृणा है कि मैं इनके साथ शरीक भी नहीं हो सकता ‡ ।

( ६ ) फिर उसी विद्वान् (हिल) ने एक दूसरी जगह लिखा है कि "रूम बुलाने के सम्बन्ध में जो प्रमाण दिये जाते है, वे सन्तोष के योग्य नहीं हैं-उसने फिर यह लिखते हुये कि ये सब काम धोखा देने के लिये किये जाते हैं और उदाहरण में तीन मेडियमों का जिक्र किया है, जो थोड़े ही समय में एक के बाद दूसरा, दूसरेके बाद तीसरा (*Trick*) करते हुये पकड़े गये * ।

(१०) डाक्टर वरेमवेल 'हिपनाटइज़्म' के प्रसिद्ध प्रयोक्ता का कथन है कि सकते या बेहोशी हालत में केवल लघु मस्तिष्क ( subconsciousness or subjective mind ) काम करता है और उनसे संलाप आदि का उरदायित्व उस पर और केवल उसी पर है ×—

( ११ ) फ्रेंक पोड़ मोर ने भी वरेमवेल के प्रदर्शित मार्ग का अनुसरण किया है और वे भी रूह बुलाने आदि समस्त कार्य्य लघु मस्तिष्क का ही समझते हैं * :—

( १२ ) एक विद्वान मनस्टर वर्ग लिखते हैं कि रूहों को बुलाने आदि की बातें न तो ठीक हैं और न तो ठीक होगी, और

---

* Spiritualism by J. A. Hill p. 15

† Spiritualism by J, A. Hill p. 6,

‡ Spiritualism by J. A; Hill p. 16

× Master workers by Harold Begbie p, 266.

* Master workers by Harold Begle p. 261.

इस मामले में जितना ही, वाद किया जाता है, उससे उतन ही यह मामला और खराब ठहरता है†:—

( १३ ) एक विद्वान् ने लिखा है कि ये रूहों का बुलाना आदि सब चालाकी है—यदि मरे हुये पुरुषों की रूहें जिन्दा आदमियों से बात चीत कर सकती हैं, तो क्यों नहीं उन्हीं से साक्षात् बात चीत करतीं, जो उनसे बात करना चाहते हैं—क्यों किसी माध्यम के द्वारा ही बात करती हैं-उसने यह भी लिखा है कि जनता इन रूह बुलाने वालों की बड़ी कृतज्ञ होगी यदि वे कोई ऐसी तजवीज़ निकालें जिसके द्वारा मृत पुरुषों की गवाही कमीशन द्वारा खुली कचहरियोंमें हो सका करे *:—

( १४ ) माध्यमों ( Mediums ) की धोखेबाज़ी और ऐसे संघों की कार्य्य प्रणाली पर दृष्टिपात करते हुये प्रोफेसर बैरेट कहते हैं कि अब मृत जीवों के सन्देश फीके पड़ रहे हैं और यह उत्साह जो पहले था, अब कहीं दिखाई नहीं देता *:—

उपर्युक्त कथन के बाद इस प्रकरण को समाप्त करते हुए आत्मवेत्ता ऋषि ने कहा:—

आत्मवेत्ता—आवश्यकता नही कि इस सम्बन्ध में और अधिक बातें कही जावें-जो कहा जा चुका है,वह रूहें के बुलाने के संघमें माध्यम पुरुषों द्वारा जो छल और वंचकताकी जाया करती है, उन पर प्रकाश डालनेके लिए पर्याप्त है-मेडियम छल

---

† "The facts as they are claimed do not exist and never will exist and no debate makes the situation better" ( Psychology and life by munsterbert p 254

() The beliefin personal immortality by E S,p. Hayness p. 109,

*Psychological Research by prof Barret p. 245and246

करते हुए संघ में उपस्थित सज्जनों द्वारा पकड़े जाते हैं और इतने अपमानित होते हैं, कि किन्हीं ने तो यह ( रूह के बुलाने आदिका ) काम ही छोड़ दिया है, परन्तु फिर भी यह संघ बंद क्यों नहीं होजाते, इसका कारण है और पुष्ट कारण है और वह कारण यह है, कि यह संघ अब वैज्ञानिक परीक्षा की सीमाका उल्लंघन करके धन कमाने के पेशों में परिवर्तित होगये हैं, वे लोग जिनकी जीविका इसी से चलती है, यदि इसे छोड़ देवें, तो फिर खायें क्या ? इसीलिये ये संघ बन्द न हुये और न होने की आशा है।

❀ "छल कपट का पेशा क्यों किया जाता है" ❀

**लोकमणि**—फिर लोग ऐसा पेशा करते ही क्यों हैं, जिसमें उन्हें छल कपट करना पड़ता है।

* "इसके कारण" *

**आत्मवेत्ता**—इसके दो कारण हैं:-(१) पश्चिमी सभ्यता का एक मुख्य अंग उपयोगितावाद ( Utilitarianism ) है, जिसका भाव यह है, कि उपयोगिता की दृष्टि से प्रत्येक अनुचित से अनुचित काम कर लेना भी जायज़ है—उपयोगिता हो, तो रिश्वत देना जायज़ है *। भूख से अगर आदमी मरता हो, तो चोरी करना जायज़ है। मिल के अधिकांश लोगों के अधिक से अधिक सुख ( Greatest good of the greatest number ) के नियमानुसार सिजविक ने निर्णय किया है कि छोटे लड़कों और पागलों को उत्तर देने के समय, इसी प्रकार बीमारों, अपने शत्रुओं और चोरों को या अन्याय से प्रश्न करने वालों को उत्तर देते समय अथवा वकीलों को अपने

---

❀ "Thus to save a life, it may not only be allowable but a buty to s/eal "(Mill's Utitarianism Ch V page 95

व्यवसाय समय में झूँठ बोलना अनुचित नहीं है † इत्यादि—यहां तक कि ईसा के एक प्रतिष्ठित शिष्य "पाल" ने नये अहदनामे की एक पुस्तक में लिखा है कि यदि मेरे असत्य भाषण से प्रभु के सत्य की महिमा और बढ़ती है ( अर्थात् ईसाई धर्म का अधिक प्रचार होता है ), तो इससे मैं पापी क्योंकर हो सकता हूं ‡" जब उपयोगिता होने पर नीति आचार और धर्म प्रचारों में भी झूठ बोल ना जायज़ है तो धन कमाना भी तो उपयोगिता ही है इसके लिए यदि झूठ बोलना पड़े या छल कपटसे काम लेना पड़े, तो फिर इसमें क्यों किसी को संकोच होना चाहिए यदि रूह बुलाने का ढंग रच लेने से धन मिल सकता है, तो फिर इसमें हिचिर मिचिर करने की कौन सी बात है:—

दूसरा कारण यह है कि भारतवर्ष में अंगरेज़ी पढ़े लिखे पुरुषों ने अपनी आजीविका पैदा करनेका साधन नौकरी और वकालत को बना रक्खा था, सो इन पेशों में अब उनकी खपत होने के लिए जगह बाक़ी नहीं रही । व्यवसाय या व्यापार करने का इनमें साहस पैदा नहीं हुआ, फिर करें तो क्या करें एक ग्रेजुएट को सात जीवन व्यतीत करने पर भी सौ डेढ़ सौ रुपए से अधिककी आय नौकरी करके नहीं होती । यही हालत वकालत के पेशों की है, वहां अब अधिक लोगों की खपत हो नहीं है । एसी हालत में यदि एक ग्रेजुएट, रूह बुलाने के पेशे में १५) प्रति संघ वसूल कर सके, तो वह तो समझेगा कि उसके हाथ सोने का अण्डा देने वाली मुर्गी आगई । यदि एक

† sidgevick's methods of Ethics, Book III, Ch, XI sec. 6, p. 315—317 and 355 7 th Ed-

‡ "For if the truth fo God hath more abounded through my lie unto his glory why yet am I also judged as a sinner ?" Romans 3·7

भी संघ प्रति दिन होगया तो १५) की दैनिक आय होगई और ऐसे कार्यों में धन ख़र्च करने वाले बेवकूफ़ों की किसी जगह भी कमी नहीं है । ख़ासकर यह देश तो आजकल पेशों की खान ही बन रहा है। फिर इसी पेशे को करके जीविका क्यों न उपलब्ध करनी चाहिए, यह प्रश्न है, जो अनेक अंगरेज़ी पढ़े लिखे बाबू लोगों के सामने आता है और उनमें से कई यह स्वीकार कर लेते हैं। अधिकतर उन्हीं के कारण यह बुलाने की चरचा इधर उधर फैली हुई है। कुछ दिनों के बाद जब इस पेशे की चढ़ी हुई कमान उतर जायगी और लोगों के लिए ये संघ रुचिकर न रहेंगे, तब इस पेशे का करना भी लोग स्वयमेव छोड़ देंगे।

**ऋषिकुमार**—प्रसिद्ध तो यह है कि किसी को संदेश देनेके लिए परलोक से उसकी स्त्री आया करती है, किसीको संदेश देनेके लिए सरफीरोज़शाह महता आते हैं, कोई स्वामी रामतीर्थ की रूहको बुलाता है, तो क्या ये बातें सब की बस मिथ्या हैं?

### ॐ परलोक के सन्देश अपने ही विचारों का फल हैं ॐ

**आत्मवेत्ता**—यह अच्छी तरह से समझाया जा चुका है कि ये जो सन्देश रूहों के नामों से आया करते हैं, असल में ये अमल करने वालों के ही विचार और ज्ञान का परिणाम होते हैं—उदाहरणके लिए देखो एक दक्षिणी जो पौराणिक मत रखता है उसके पास जो सन्देश आते हैं, उनमें ज़िक्र होता है कि रविवार ब्राह्मण को अन्न दान करे *, मृत्यु के समय उसके पास कृष्ण वर्ण के यमदूत आए और यमपुरी को लेगए, मार्ग में सब देवताओं की मूर्तियाँ दीखती थी, एक नदी ( वैतरणी को पार करना पड़ता है[]—परलोकमें अन्न वस्त्र की ज़रुरत हुआ

* सुभद्रा बी.डी.ऋषि कृत पृष्ठ २२। [] बी.डी.ऋषि कृत सु०पृष्ठ ५१-५३।

करती है ( इसलिए मरेहुओं को अन्नवस्त्र देना चाहिए †), परलोक में आरती पूजा होती है, जप करना पड़ता है, दो घण्टे पुराणों की कथा होती है, प्रातःकाल दूध पीता हूँ, वाहन पर बैठ कर दो कोस घूमने जाता हूं, मन्दिर में जाता हूं, तीनों काल की आरती करके तब घर लौटता हूं, त्रिकाल स्नान करता हूं, एक पांव पर खड़ा रह कर तप करता हूँ, भोजन करके एक घण्टा सोता हूँ, ≡ मदिरा-व्यसनी किसी स्थूल शरीर में प्रवेश कर तृप्त होते (अर्थात् मदिरा पीते) हैं, हर एक व्यसनी ( इसमें व्यभिचारादि सभी व्यसन सम्मिलित हैं) किसी स्थूल शरीरमें प्रवेश कर अपनी इच्छा तृप्त कर लेता है, वृद्ध प्राणी की मृत्यु के उपरान्त "हरि हरि" करते हैं, श्राद्ध तर्पणादि क्रियासे हम (परलोकवासी) तृप्त होते हैं, ब्राह्मण व्यतिरिक्त अन्य जाति के लोग उपरोक्त विधि नहीं करते, किंतु ब्राह्मण का 'सीधा' सामान दान करते हैं, कोई द्रव्य भी दान करते हैं, मनुष्य पुनः वृक्ष वा पशु योनि में भी जन्म पाता है, कैलास (परलोक का) केवल शिव भक्त ही जाने जाते हैं श्राद्धादि कर्मों के न करने से हम भूखे तो नहीं रहते, किन्तु श्राद्ध दिवस हमारे लिए महत्व का दिवस है, (परलोक में) कुमारियों के बिवाह होते हैं, विधवाओं के नहीं, चित्रगुप्त उस (यमराज) का विश्वस्त शिष्य है चित्रगुप्त डेढ़ दो करोड़ सेवकों का अधिकारी है, यमराज के पास एक लाख दूत हैं, चित्रगुप्तके सेवक आधी सृष्टिके लोगों के पाप पुण्य लिखते हैं, और आधी सृष्टि के वे ( चित्रगुप्त ) अकेलेही लिखा करते हैं, परन्तु अपने सेवकों के लेखे की जाँच भी चित्रगुप्त को करनी पड़ती है, तब यह लेखा न्याय के लिए यमदूत के पास जाता है और वे न्याय करते हैं, पाप क्षयार्थ

---

†वी.डी.ऋषि कृत सुभद्रा पृष्ठ ५७। ≡ वी.डी.ऋषि कृत सु० पृष्ठ ५८ ६१।

" राम नाम " जपते हैं, विष्णु मन्दिर में दो सुन्दर मूर्तियां हैं, यहां (परलोक में) पर बद्रीनारायण का एक मन्दिर है + ।

इन सन्देशों पर ध्यान पूर्वक दृष्टि डालो, एक पुराणोक्त मतानुयायी जिन बातों को यहाँ मानता है, वही उसके लघु मस्तिष्क ( चित्त ) में स्मृति के रूप में रहती हैं और उसी स्मृति भण्डार से स्वयं प्रस्ताव ( Auto suggestion ) के प्रभानुसार प्रकरण उपस्थित होने पर रूहों के सन्देश के रूप में निकल आया करती हैं ।

तर्कप्रिय—इन सन्देशों के अनुसार यदि सचमुच कोई परलोक है,तो यह निश्चित है कि वह केवल पुराणोक्त मतानुयियों के लिए ही है,भला एक आर्य,मुसलमान या ईसाई क्यों शिव या विष्णु के मन्दिर में जाने लगे, क्यों वह पुराणों की कथा सुनने लगे, क्या मुसलमान या ईसाई जब परलोक में मरते हैं, तो वे भी " हरि हरि " हो कहा करते हैं ?

नोट—इस पर सब हँस पड़े ।

**मेधावी**—परलोक में भी ब्राह्मण और अब्राह्मण का भेद है—वहाँ विधवाओं के विवाह नहीं होते-क्या ईश्वरचन्द्र-विद्यासागर की रूह ने अपना विधवा विवाह का कानून वहां यमराज की कौन्सिल में पास नहीं कराया ?

नोट—फिर सब लोग हँस पड़े—

**जोशी**—चित्र गुप्त के डेढ़ दो करोड़ सेवक क्या कभी हड़ताल भी करते हैं ?

नोट—फिर सब लोग हंस पड़े ।

---

× श्री. डा.क कृत सुभद्रा पृष्ठ ६८ ·७७ ।

**प्रजाप्रिय**—जब यमराज के पास केवल एक लाख दूत हैं और चन्द्रगुप्त के पास डेढ़ दो करोड़ सेवक, तो समझ में नहीं आता, कि चन्द्रगुप्त चुप चाप क्यों बैठा है—क्यों वह रूस के जार की तरह, यमराज को कैद करके साइबेरिया नहीं भेज देता और क्यों प्रजातन्त्री राज्य की स्थापना करके परलोक को उसके शासन से स्वतन्त्र नहीं कर लेता ?

नोट—फिर सब हंस पड़े।

**सोमदेव**—"श्राद्धादि कर्मों के न करने से हम भूखे तो नहीं मरते" यह कह कह उसे रूह ने, ऐसा प्रतीत होता है कि आर्य्य समाजियों की कुछ रिआयत कर दी है।

नोट. इस पर भी सब हंस पड़े

"रूहों के शरीर"

**विज्ञानप्रिय**सीज़र* लोम्ब्रासों ने बतलाया है—इस परलोक में रहने वाली रूहों के शरीर ईथर के होते हैं और १२०० मील एक घण्टे में चल सकतीं हैं—तो फिर दो कोस चलने के लिए ये रूहें किस लिए वाहन पर सवार होती हैं ? और क्या इनके बाहनों के भी शरीर ईथर ही के होते हैं ?

**आत्मवेत्ता**—सर आलिवरलाज ने जो रूहों के बुलाने आदि में विश्वास रखने वाले वैज्ञानिक समझे जाते हैं, ईथर के शरीर होने की सम्भावना से इनकार किया है, उन्होंने यह भी लिखा है कि यदि ईथर के शरीरों की कल्पना भी करली जावे तो उन्हें कोई देख नहीं सकता—इसीलिए इस तथा परलोक संबंन्धी अन्य सभी बातों को उन्होंने "असमर्थनीय बातें (Un

---

* *Biology of the spirits by Cesare Lombeosro p-329*

vetifyable ) कहा है*—जिस प्रकार की बात रूहों के शरीर के सम्बन्ध में, लामबार्सों ने कही है—एडवड कारपेन्टर ने कुछ उस से भी बढ़ कर बात कह डाली है वह कहता है कि मानुषी जीव का ताल एक ओल का कोई भाग है, परन्तु उस का रूप उस की आकृति, उसकी लम्बाई और चौड़ाई मनुष्य शरीर के सदृश है और जब वह पूर्णता को प्राप्त कर लेगा, तो उसकी ऊंची ३५ से ३८ मील तक† होगी‡ पर बात यह है कि इन सब को तुम बन्दी से अधिक कुछ नहीं कह सकते—

**हंसमुख**—परलोक में तीन बार ( प्रातःकाल ५ बजे, दोपहर १२ बजे और रात्रि में भी १२ बजे) स्नान करने की क्यों जरूरत होती है? इससे तो प्रतीत होता है कि परलोक हिन्दुस्तान का जैकेबाबाद×ही है?

नोट—इस पर सब हंस पड़े—

**एक आलोचक**—जब परलोकमें शराबभी दीजाती है और व्यभिचार आदि सभी व्यसनों की पूर्ति करने का भी लाईसेन्स मिला हुआ है, तो इस परलोक से तो हिन्दुस्तान के चकले ही अच्छे हैं?

नोट—इस पर भी सब जोर से हंस पड़े और देर तक हंसते रहे।

---

* Raymond by sir Oliver Lodge ch on spiritualism

‡ "योजनचार मूंछ रही डाढी"। तुलसी दास जी ने कुम्भकरण के संबंध में लिखा है फिर इसमें सन्देह करने की कौनसी बात रह जाती है—

† Drama of life and Death by Edward carpenter p 172

× हिन्दुस्तान में सबसे अधिक गर्मी जैकेबाबाद ही में पड़ती है—

पांचवां परिच्छेद

# रूहों को बुलाना

अगर रूहों का आना ठीक नहीं, तो फिर "अमुक की रूह
ऐसा क्यों बतलाया जाता हैं।

**जिज्ञासु**—यदि रूहों के आने आदि की सब बातें निराधार हैं, तो फिर ग्रहणक्षुभ ( percepiem ) अपने को कभी किसी की रूह और कभी किसी की रूह क्यों बतलाया करता है ?

**आत्मवेत्ता**—इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं है ! किसी को भी मेस्मरइज्म या हिपनाटइज्म से मूर्छित करके कहलाया जा सकता है कि वह निपोलियन है, नैलसन है दयानन्द है राम तीर्थ है। यही नहीं, उससे यह भी कहलाया जा सकता है कि वह कुत्ता है, बिल्ली है, गदहा है इत्यादि—

❀ वस्तु पर संस्कार psychomatory ❀

**देवदत्त**—यह बात कहां तक ठीक है कि इस्तैमाल की वस्तुओं पर प्रयोक्ता के आचार व्यवहार के संस्कार अंकित हो जाते हैं और विशेषज्ञ उन वस्तुओं को देख कर उन आचार और व्यवहारों की तफसील बतला सकता है ?

**आत्मवेत्ता**—इस समय तक इस विषय में जितनी बातें कही गई हैं, उनसे तो यह प्रकट होता है जि कुछेक मोटी बातों को छोड़कर बाकी बातें इस कल्पित वस्तु संस्कार के अध्ययनसे नहीं बतलाई जासकतीं। जो मोटी २ बातें इसवस्तु संस्कारसे बतलाई जासकती हैं उनका विवरण इस प्रकार है:—

वस्तुओं के इस्तैमाल में आने से उन में इस्तैमाली होने के चिन्ह घिसावट आदि आ जाती हैं, इन घिसावटों में भेद होता है, किन्हीं के इस्तैमाल करने से वस्तु का विशेष भाग अधिक घिसता है, परन्तु अन्यों के इस्तैमाल करने से वह नहीं, और भाग अधिक घिस जाता है। बरतने वाले पुरुषों के स्वभाव और इन घिसावट के भेदों को लक्ष्य में रखने से एक परिणाम निकल आया करता है कि अमुक स्वभाव वाले पुरुषों के इस्तैमाल करने से वस्तु का अमुक भाग घिसता है बस वस्तु के उस भाग की घिसावट से बरताव करने वाले पुरुष का स्वभाव बतलाया जा सकता है।

❀ एक उदाहरण ❀

एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है उदाहरण में जूते को लीजिये—जूते की तली को देखने से प्रकट होगा कि किन्हीं के जूतों की एडी अधिक घिसती है, किन्हीं के जूतों का अगला भाग और किन्हीं के जूते सभी जगह से समता के साथ घिसते हैं। अब उन पुरुषों के स्वभाव की जांच करो कि जिन के जूतों की एड़ी अधिक घिसा करती है। एक दरजन अधिक पुरुषों की जांच करने से पता चला किजिनके जूतों की एड़ी अधिक घिसा करती हैं, वे प्रायः सभी बहुत साहसी और जोशीले आदमी हुआ करते हैं। अब इस जांच से एक नियम बन गया कि जिनके जूतों की एड़ी अधिक घिसती हैं, वे उत्साही और जोश वाले मनुष्य हुआ करते हैं। अब इस नियम को ध्यान में रखने से जूते की एड़ी देखकर उसके प्रयोग कर्ता का स्वभाव बतलाया जा सकता है। इसी प्रकार से अनेक वस्तुओं की जांच करने से अनेक नियम बनाए जा सकते हैं— इस साधारण सी बात को भी कुछेक पुरुषों ने आत्मविद्या क

एक अंग बना रक्खा है, परन्तु इसका रूहों के बुलाने आदि से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। यह एक बिलकुल अलग विषय है और इसका ज्ञान उपर्युक्त भांति प्राप्त किया जा सकता है परन्तु जो लोग इस प्रकार जांच न करके स्वयमाभिमान से किसी वस्तु के देखने मात्र से प्रयोगकर्ता के स्वभाव आदि बतलाने का साहस किया करते हैं उनकी बातों के लिये स्वयं रूह बुलाने का व्यवसाय करने वालों को स्वीकार है कि सब सच नहीं होती हैं* वस्तु संस्कार की बात यहां समाप्त हुई। अब फिर असली प्रकरण पर पहुंच जावें यह कहा जा रहा था कि मनुष्य अपने विचारानुसार ही परलोक के सम्बन्ध में कल्पनायें किया करता है उदाहरण में दिखलाया गया कि किस प्रकार एक पुराणानुयायी दक्षिणी पुरुष पर, परलोक के सम्बन्ध में वे ही सन्देश आते हैं, जो उसके लघु मस्तिष्क (चित्त) में स्मृति रूप में भरे हुये होते हैं यदि मेंडियम एक ईसाई होगा तो उस के लिये उसी के विचारानुसार सन्देश आवेंगे यदि एक मुसलमान होगा तो उसको परलोकी हूरोगिलमा, अंगूरी शराब आदि से भरा दिखाई देगा, जिससे यह बात भली भांति प्रमाणित हो जाती है कि ये रूहों के नाम वाले सन्देश असल में अपना ही लघु मस्तिष्क के सन्देश हुआ करते हैं।

**तत्ववित्**—कल्पना करो कि रूहें नहीं आती, न परलोक के नाम से रूहों की कोई "कालोनी" ही आबाद है और न वहां से कोई सन्देश ही आते हैं फिर भी मनोरंजनार्थ ही यदि ये रूहों के बुलाने आदि के संघ हुआ करें, जैसे अनेक इन्द्रजाली अपने तमासे दिखाया करते हैं, जिनमें हाथ की सफ़ाई के सिवा कुछ नहीं हुआ करता, तो भी क्या हानि है?

---

* वी० डी० ऋषि कृत सुभद्रा पृष्ठ १०।

※ तमाशे के तौरपर भी रूहों के बुलाने आदि के संघ हानिकारक हैं ※

**आत्मवेत्ता**—तो भी हानि है और वह इस प्रकार कि रूहों के अप्रकट रीतिसे आने जाने भूत प्रेत बन कर उनके स्वप्नादि में सन्देश देने और अन्य इसी प्रकार की कल्पनाओं का फल यह होता है कि साधारण नर नारी के हृदय में उनका भय उत्पन्न हो जाता है और वह भयभी इस प्रकारका कि उसे किसी प्रकट साधन या साधनों से दूर नहीं कर सकते। और हृदय में इस प्रकार का भय बना रहने से हृदय निर्बल हो जाता है और हृदय की निर्बलता मनुष्य की अकाल और शीघ्र मृत्यु का कारण बन जाती है। मनुष्य को निर्भीक होना चाहिये, इसी लिये वेद※ में ईश्वर से प्रार्थना की गई है कि अन्तरिक्ष, द्यौ (प्रकाश लोक सूर्य्यादि) पृथ्वी (अप्रकाश लोक, मंगल आदि), आगे पीछे, नीचे, ऊपर, मित्र, शत्रु, ज्ञात, अज्ञात, दिन रात सभी के भय से मुक्त कर देवे। भूत प्रेत से डरने वाले या उनकी सत्ता मानने वाले सदैव कायर और डरपोक हुआ करते हैं और भीरुता और कायरता के समावेश से मनुष्य मनुष्यत्व के सब से श्रेष्ठ अधिकार निर्भीकता को खो बैठता है और इस प्रकार अपनेको पतित कर लेता है। अतः ये मिथ्या विश्वास किसी रूप में भी क्यों न रक्खे जावें, मनुष्य के लिये हानिकारक हैं, और इसी लिये त्याज्य हैं। इसी उपदेश के साथ संघ का कार्य समाप्त हुआ और आत्मवेत्ता ऋषि ने साथ ही घोषणा भी करदी कि अगले संघ के साथ इस सत्र का कार्य्य समाप्त हो जावेगा।

———※:※———

※ अथर्ववेद का० १९ सूक्त १७ मंत्र ५, ६

# चौथा अध्याय

पहला परिच्छेद

"ग्यारहवाँ संघ"

## ❁ अन्तिम कर्तव्य ❁

———+❋+———

प्रारम्भ—आज के संघ को अन्तिम संघ समझते हुए निकटवर्ती नगरों और ग्रामों के अधिकांश नर-नारी इच्छुक हैं कि संघ में चलें और आत्मवेत्ता ऋषि से अन्तिम कर्तव्य का उपदेश सुनें। रात्रि का सुहावना समय है-धीमा धीमा आह्लाद प्रद वायु प्रवाहित हो रहा है। चन्द्रमा स्वच्छ नीले गगन मण्डलमें प्रकाशित हो अपनी उज्ज्वल आभा का विस्तार कर रहा है। रात्रि में खिलने वाले रजनि गन्धा आदि पुष्पों की अनुपम छटा है। सारी वाटिका सुगन्धि पूरित हो रही है। संघ में भाग लेने के उमंग में नर नारियों के झुण्ड के झुण्ड श्रावण की घनघोर घटाओं की तरह उमड़े चले आ रहे हैं, हृदय नव विकसित सरोज की भांति खिले हुए हैं व उल्लास पूर्ण उत्साह से उत्साहित हैं, जिज्ञासा और शिक्षा ग्रहण की अपूर्व उत्कण्ठाओं से उत्कण्ठित हैं, देखते देखते संघ लग गया और इतनी भीड़ है कि इससे पहले कभी नहीं हुई थी। आत्म वेत्ता ऋषि आये अपने नियत आसन पर बैठ गये। संघ का समय होगया, इसलिए कार्य्यारम्भ हुआ।

**आत्मवेत्ता**—मृत्यु क्या है, मृत्यु के बाद क्या होता है ये और इनसे सम्बन्धित अनेक विषयों पर इससे पहले दस संघों में प्रकाश डाला जा चुका है और विश्वास है कि उन्हें

संघ के प्रेमियों ने अच्छी तरह समझ लिया है, प्रसंग वश उपर्युक्त विषयों के साथ भिन्न भिन्न स्थलों पर मनुष्यों के कर्तव्यों का भी विधान हो चुका है, फिर भी आज के संघ का उद्देश्य यह है कि स्पष्ट शब्दों में मनुष्य के मुख्य कर्तव्यों को इकट्ठा वर्णन कर दिया जावे—तदनुकूल वे वर्णन किये जाते हैं—आज शङ्का समाधान का कोई प्रकरण नहीं है, आज तो प्रत्येक बात जो बतलाई जावे, हृदयाङ्कित कर लेनी चाहिए और उसके अनुकूल आचरण करने का यत्न करना चाहिए। उनके आचरण में लाने ही से मनुष्य मृत्यु के दुःख से मुक्त होसकता है, जिन कर्तव्योंकी आज शिक्षा मिलनी है, वे गिनती में सात हैं। अब उन्हीं में से एक को कहा जाता है।

पहली शिक्षा—सबसे प्रथम जिस शिक्षा को देना है, वह ब्रह्मचर्य्य की शिक्षा है—ब्रह्मचर्य्य का यह भाव है कि मनुष्य में आस्तिक बुद्धि के साथ वह योग्यता उत्पन्न हो जिससे मनुष्य अपने मन और इन्द्रियों पर अधिकार रख सके—मन बड़ा चञ्चल है—यही मन की चञ्चलता जब इन्द्रियों में भी आ जाती है तब मनुष्य का पतन हो जाता है।

नोट—आत्मवेत्ता इतना ही कहने पाये थे, कि संघ के समीप ही से किसी ने यह एक भजन गाना शुरू किया, जिसकी ओर सबका ध्यान चला गया :——

* भजन *

मन मतवारा इन्द्रिय बस में। इन्द्रिय हैं विषयों के बस में॥
कान मुग्ध रस में शब्दों के। नेत्र रूप के जकड़े रस में॥
बँधा गन्ध से है घ्राणेन्द्रिय। त्वचा फँसी स्पर्श सरस में॥
भाँति भाँति के भक्ष्य भोज कर। रसना उलझ रही षट् रस में॥
इस बन्धन से छुटकारा हो। प्रभु करो मम-चित्त निज बस में॥

दूसरी ओर से फिर आवाज़ आने लगी—

* भजन * २ *

मन पछतै हैं अवसर बीते ।

दुर्लभ देह पाइ प्रभु पद भज कर्म वचन असहीते ॥ सहस बाहु दस वदन आदि नृप बचे न काल बली ते । हम हम करि धन धाम संवारे अन्त चले उठ रीते ॥ सुत बनितादि जानि स्वारथरत न करूं नेह सब हीते।अंतहु तोहि तजैंगे पामर तू न तजै अब हीते ॥ अब नाथहिं अनुराग जागु जड़ त्यागु दुरासा जीते।बुझे न काम अगिनि"तुलसी"कहुँ विषय भोग बहु घीते॥

**आत्मवेत्ता**—इसलिये सबसे बड़े मनुष्यके यहीदोकर्तव्य हैं (१) ईश्वर परायणता (२)अपने ऊपर अधिकार–इन्हीं कर्तव्य द्वय का नाम ब्रह्मचर्य्य है सुतराम् ब्रह्मचर्य्य प्रत्येक नर नारी के लिये अनिवार्य्य है जितने भी इन्द्रियों के विषय हैं, क्षणिक सुख के देने वाले हैं और उस क्षणिक सुख बीतने के साथ ही प्राणियों में उस विषय की आसानी जानकर, उससे वैराग्य उत्पन्न होता है परन्तु यह वैराग्य के बीतने पर फिर मनुष्य उन्हीं विषयों की ओर चलने लगता है।बस, इसी चलेन्द्रियता के दोष के दूर करने का साधन ब्रह्मचर्य्य है ।

**सत्यकाम**—विषयकी निस्सारता का अभिप्राय क्या है?

**आत्मवेत्ता**—कोई विषय हो, उसका सुख बहुत थोड़ी देर उसके भोगने के समय मात्र में, रहता है इधर भोग ख़त्म हुआ, उधर सुख रूख़सत उदाहरण के लिये रसना के विषय को लीजिये। मनुष्य को किसी वस्तु विशेष का स्वाद अत्यन्त प्रिय है, वह उसी स्वाद के लिये उसे खाता है जिह्वा पर उस वस्तु के रखते ही स्वाद आ जाता है परन्तु वह स्वाद प्रिय प्राणी चाहता है कि उस वस्तु को खाये नहीं, किन्तु जिह्वा पर ही

रक्खा रहने दिया जाय, जिससे देर तक स्वाद आता रहे, परन्तु अब उसे ऐसा करने के स्वाद नहीं आता, उस वस्तु के जिह्वा पर रखते ही खूब स्वाद आ गया था, परन्तु मालूम नहीं वह स्वाद कहां चला गया वस्तु जिह्वा पर रक्खी हुई है, परन्तु स्वाद नहीं आता अब स्वाद क्यों नहीं आता, इसलिये कि वह तो क्षणिक था स्वाद का क्षण बीतते ही स्वाद ख़त्म हो गया यही हाल संसार के प्रत्येक विषय का है, इसलिये इन विषयों को क्षणिक और निस्सार कहा जाता है ब्रह्मचर्य्य के नियमों पर अमल करने की योग्यता उत्पन्न करने के लिये यह आवश्यक है कि मनुष्य उठते, बैठते, सोते जागते इन सब नियमों को स्मरण करता रहे, और भरसक यत्न करे कि उन्हें काम में लावें उनके काम में लाने के लिये दो साधन हैं:—

❀ ब्रह्म चर्य्य के दो साधन ❀

पहला साधन तप है —मनुष्यों को कठोरता सहने का जीवन व्यतीत करना चाहिये—कष्टों को प्रसन्नता से सहन करना चाहिये आराम तलबी के पास भी नहीं फटकना चाहिये दूसरा साधन स्वाध्याय है उत्तम २ ग्रन्थों के अध्ययन से मनुष्य का हृदय और मस्तिष्क ब्रह्मचर्य्य के पवित्र नियमोंके ग्रहण करनेके योग्य बना करता है।

**दूसरी शिक्षा**—चित्त की एकाग्रता है सुख असल में विषयों में नहीं, किन्तु चित्त का एकाग्रता में है इसलिये चित्त एकाग्र होना चाहिये चित्त की एकाग्रता प्राप्त करने के लिये इस बात की आदत डालनी चाहिये कि जो काम भी करे, खूब जी लगा कर किया करे और अपने को कभी ख़ाली न रक्खे, कुछ न कुछ सदैव करते रहना चाहिये चित्त की एकाग्रता के लिये ईश्वर के मुख्य नाम ओ३म् का सार्थक जप इस प्रकार करना

चाहिये कि कोई श्वास जप से खाली न जाने पावे —यह जप प्रातः सायँ अथवा रात्रि आदि में अपनी अपनी सुविधा के अनुसार करना चाहिये। इन साधनों से चित्त एकाग्र हो जाता है चित्त की एकाग्रता मानो मोहन मंत्र है, जिससे प्रत्येक कार्य्य की सिद्धि हो सकती है।

नोट—दूसरी शिक्षा का व्याख्यान समाप्त करते ही एक सत्संघी ने ऋषि की अनुमति लेकर एक भजन सुनाया:—

* भजन *

मोहन मन्त्र सिखादे मैया, मोहन मन्त्र सिखा दे ॥ आ ! स्वर्गीय शान्ति की प्यारी अनुपम प्रभा दिखादे ॥ मैया० ॥ हृत्तन्त्री के तार हिलादे, जीवन शंख बजादे। आशा का संगीत सुनादे, साहस साज सजादे ॥ मैया० ॥ मस्त बनादे, देश प्रेम की बूटी हमें पिलादे, द्वेष हटादे, मोह घटादे, मरते हुये जिलादे मैया० ॥ पौरुष दीप जलादे, क्षण में बाधा विघ्न भगादे। सोई हुई कला कौशल को, कौशल मई ! जगादे ॥ मैया मोहन मन्त्र०

* तीसरी शिक्षा *

आत्मवेत्ता—"ममताका त्याग" है—ममताका व्याख्यान हो चुका है* ममता दुखों की जननी है ममता को छोड़ देने से मनुष्य दुखों की सीमा उल्लंघन कर जाता है मौत उसके लिये कष्ट-प्रद नहीं रहती है ममता का साधन वैराग है प्रबल वैराग से ममता नष्ट हो जाती है, इसलिये यत्न करके वैराग से ममता के परदे को चित्त से हटा देना चाहिये काम ज़रूर मुश-किल है, परन्तु असम्भव नहीं, यत्न करने से सब कुछ हो जाता है।

उदयवीर—तुलसीदासजी भी इस ममता के फ़रयादी थे:—

* देखो पहले अध्याय का चौथा परिच्छेद।

* भजन *

ममता तू न गई मेरे मन ते ॥

पाकर तोह जन्म को साथी, लाज गई लोकनतें। तन थाक्यो कर कांपन लागे, ज्योति गई नैननतें ॥ ममता० ॥ †स्रवन बचन न सुनत काहु के, बल गये सब इन्द्रियनतें । टूटे ‡ दसन बचन नहिं आवत, सोभा गई मुखन तें ॥ ममता० ॥ कफ़, पित, बात कण्ठ पर बैठे सुतहिं बुलावन करतें। भाई बन्धु सब परम प्यारे, नाहिं निकारत घरतें ॥ ममता० ॥ जैसे ससि मंडल बिच स्याही छूटे न कोटि जतनतें। "तुलसीदास" बलि जाऊं चरननतें लोभ पराये धनतें ॥ ममता तू न गई मेरे मनतें ॥

❀ चौथी शिक्षा ❀

**आत्मवेत्ता**—चौथी बात जो आचरण में लानी चाहिये, वह आत्म-अध्ययन है। आत्म अध्ययन का भाव यह है कि मनुष्य शान्ति के साथ समय २ पर अपने गुण और दोषों पर विचारकिया करे और दोषोंको छोड़नेके लिये यत्नवान्‌रहा करे जब तक मनुष्य अपने ऊपर दृष्ठि नहीं रखता, तब तक उसे अपने दोषों, अपनी त्रुटियों का पता नहीं चला करता, इसीलिये दिन रात में एक ख़ास समय में और सबसे अच्छा रात्रि में सोने से पहिले का समय इस काम के लिये हुआ करता है, उसी समय ईश्वर को अपने हृदय में विराजमान समझ कर अपने दिन भर के कामों पर विचार किया करे, जो जो उनमें त्रुटियां हुई हों, उनके लिये प्रतिज्ञा कर लिया करे कि कल से ये न होंगी और फिर पूरा पूरा यत्न किया करे, कि वे दोष उसमें न रहें, इसी का नाम आत्म-अध्ययन है।

---

† [१] स्रवण = श्रवण कान [२] ‡ दान्त

दूसरा परिच्छेद

# अन्तिम कर्त्तव्य।

✽ पांचवीं शिक्षा ✽

पहली चार शिक्षायें, वे कर्त्तव्य हैं, जिनका समन्ध केवल उन्हीं मनुष्यों से हुआ करता है, जो उन्हें प्रयोग में लाया करते हैं, अब दो शिक्षायें वे हैं, जिनका सम्बन्ध अन्यों से है, उनमें से पहली अर्थात् पाचवीं शिक्षा "विश्वप्रेम" है मनुष्य का हृदय लचकीला होना चाहिये, जिससे उस में प्राणी-मात्र की हित कामना निहित रहा करे ईश्वर जगत् का पिता है, मनुष्य पशु पक्षी सभी, उसके उत्पन्न किये हुये, उसके पुत्र और पुत्रियों के सदृश हैं इसलिये जहां मनुष्यों के अन्तर्गत भ्रातृ भाव होना चाहिये, वहां पशु पक्षियों के लिये भी उनके हृदयमें दयाका भावरहना चाहिये इस प्रेमकी, मंगल कामनासे, जब मनुष्यका हृदय पूरित रहा करता है, तब उसके भीतर एक अपूर्व उत्साह और आह्लाद की आभा जाज्वल्यमान रहने लगती है उसके प्रत्येक कार्य्य की सिद्धि का अचूक कारण बना करती है। और मनुष्य इसी प्रकाश से अनेक दोषों तथा अनाचारों से बचा करता है जहां प्रेम से हृदय शुद्ध और उदारतापूर्ण हुआ करता है, वहां ईर्ष्या द्वेष के मलीनता और संकीर्णता का वह निवास गृह बना करता है यही कर्त्तव्य है, जिसके प्रयोग में आने से मनुष्य परस्पर प्रेम के सूत्र से सूत्रित होकर जाति और समाज बनाया करते हैं, जो अभ्युदय (लोकोन्नति) का एक मात्र कारण है परस्पर मनुष्यो में यह प्रेम की लता अधिकतर उसी समय अंकुरित हुआ करती है, जब उनके हृदय प्रभु प्रेम

से भी पूरित हुआ करते हैं इसलिये मनुष्य प्रेम और ईश्वर प्रेम दोनों साथ साथ ही चला करते हैं:—

नोट-संघ के एक सदस्य ने मग्न होकर भजनगाना शुरू किया:-

* भजन *

प्रेम बीज तू अविनाशी है, नश्वर विश्व रहे न रहे।

विश्व प्रेम में रंग ले प्यारे फिर तनु-रक्त रहे न रहे॥ विद्युतमय विचार विभुता हो मृणमय † देह रहे न रहे ॥क्षत विक्षत हृदय में समता हो, शब्द स्नेह रहे न रहे ॥ नव अंकुर विकासमय उलहे ऊषर खण्ड रहे न रहे ॥ ज्ञान ज्योति जग में प्रकटित हो अग्नि प्रचंड रहे न रहे ॥ क्रय कर सत्य त्याग दे सर्वस पीछे शक्ति रहे न रहे ॥ हो बलिदान कर्म वेदी पर स्वार्थ भक्ति रहे न रहे ॥

* भजन *

प्रेम धन प्रभुवर प्रेमिक प्राण।

ताप तिमिर में फिरा भटकता करता अनुसन्धान। प्रेम पन्थ प्रभु ! मिला न तेरा हुआ निराश निदान ॥ अहा, नाथ इतने में प्रकटा प्रेम प्रभामय भानु ॥ दीख पड़ा तब प्रेम पन्थ प्रभु सतत शान्त सुखदान ॥ किन्तु हाय ! सहसा विद्युत सम कहां लुका वह भानु। प्रकटा दो प्रकटा दो पुनरपि उसको प्रेम निदान॥ प्रेम धन प्रभु प्रेमिक प्राण ॥

* छठी शिक्षा *

**आत्मवेत्ता**—छठा कर्त्तव्य सेवा का उच्च भाव है यह वह श्रेष्ठ कर्त्तव्य है, जिससे मनुष्य सहृदय और लोक प्रिय बना करता है उसके आत्मा में विशालता आती है। इसी उच्च

---

† भासवान्

कर्त्तव्य के प्रयोग में लानेसे मनुष्य पतितों का पावन बनता,है गिरे हुओं को उठाता और अनेक दोषों से युक्त प्राणियों को दोषमुक्त करता है। एक उदाहरण दिया जाता है और यह उदाहरण वैष्णव सम्प्रदाय के एक आचार्य्य "चैतन्य" के जीवन से सम्बन्धित है।

"एक उदाहरण"

एक बार महात्मा चैतन्य बंगाल के नगर में आये और एक वाटिका में ठहरे, उनके साथ उनके कतिपय शिष्य भी थे। नगर के लोगों ने बात में प्रकट किया कि उस नगर में एक व्यक्ति मद्यायी बड़ा दुष्ट है, उससे बहुधा नगर निवासी दुःखी रहा करते हैं-चैतन्य ने यह सुनकर अपने एक शिष्य को भेजा कि मद्यायी को बुला लावै—मद्यायी उस समय अपने एक दो मित्रों के साथ शराब पी रहा था उसी समय चैतन्य के शिष्य ने उसे गुरु का सन्देस सुनाया और साथ चलने की प्रार्थना की—मद्यायी ने एक खाली बोतल सन्देशहर को मारी, जिससे उसका शिर ज़ख़मी हो गया और खून निकलने लगा—उसी हालत में शिष्य ने लौटकर घटित घटना गुरु को सुनादी—चैतन्य ने तब अपने १०-१२ शिष्यों को भेजा कि यदि वह प्रसन्नता से न आवे तो उसे पकड़ लावें, मद्यायी अब उनके साथ चैतन्य के पास जा रहा है—वह सोचता जाता था कि उससे अपराध हुआ है और उसे कठोर दण्ड भोगना पड़ेगा, इसी चिन्ता से चिन्तित और दुःखी मद्यायी चैतन्य की सेवा में उपस्थित किया जाता है—चैतन्य ने उसे आराम के साथ एक गुदगुदे विस्तरे पर लिटवा दिया, परन्तु इससे उसका भय और वेचैनी दूर नहीं हुई, इसी बीचमें चैतन्य उसके पांवों के पास जाकर बैठते हैं और पांव दबाना चाहते हैं—पांव के छूते ही मद्यायी घबरा कर उठ बैठता है और बड़ी नम्रता से

उसने अपने पातकों और अवगुणों की गिनती कराते हुए कहा कि हे महाराज! आपने मेरे अपवित्र शरीर को हाथ लगा कर क्यों उन्हें अपवित्र किया, उसकी आंखों से अश्रु धारा बही चली जा रही है और वह अपने दोषों की गणना चैतन्य को कराता चला जा रहा है। फल यह होता है कि मद्यार्थी की कोया पलट जाती है और वह चैतन्य का शिष्य बनता है और उनके शिष्योंमें सबसे ऊंचा स्थान पाता है इस आख्यायिका से स्पष्ट है कि किस प्रकार चैतन्य ने सेवाके द्वारा एक गिरे हुए पुरुषको उठा कर उसे अच्छा से अच्छा आदमी बना दिया।

"सातवीं शिक्षा"

**आत्मवेत्ता**—सातवां और अन्तिम कर्तव्य विशेष कर चतुर्थाश्रमस्थ मनुष्यों का यह है कि वे अपने को ईश्वर-भक्ति और ईश्वर-प्रेम से इस प्रकार रंगलें कि उसके सिवा संसार की प्रत्येक वस्तु उसे गौण प्रतीत होने लगे इसके लिये उन्हें निरन्तर उठते बैठते सोते जागते ईश्वर का स्मरण करते रहना चाहिये। यदि वे सोने से पहले जी लगा कर ईश्वरका स्मरण करते हुए सो जावेंगे, तो निश्चित है कि उन्हें यदि स्वप्न भी दिखलाई देगा, तो उसमें वे अपने को ईश्वर का साक्षात्कार करते हुए ही देखेंगे—प्रत्येक प्रकार के झगड़ों, झंझटों और अशान्ति-प्रद कार्य्यों से चित्त हटाकर इसी ही एक काम में लग जाने से इष्ट की सिद्धि होती है और इष्ट सिद्धि के बाद व्यास के शब्दों में मनुष्य को अनुभव होने लगता है।

* प्राप्तं प्राप्तव्यम् *

आत्मवेत्ता ऋषि ने ज्योंही अपना उपदेश समाप्त किया, प्रत्येक सत्संगी अपने को कृत्य कृत्य समझ रहा था और समझने लगा था कि उसका क्या कर्तव्य है और ऋषि के प्रति

कृतज्ञता के भावों से प्रत्येक का हृदय भरपूर हो रहा था-संघ की समाप्ति की घोषणा होने से पूर्व अनेक सत्संगियों ने प्रकट रूप से उस कृतज्ञता का प्रकाश किया और चाहा कि किसी अन्तिम कर्तव्य के सम्बन्ध में कुछेक भजन गायन किए जावें ऋषि की अनुमति से उनका प्रारम्भ हुआ।

* ग़ज़ल १ *

जलवा कोई देखे अगर इकबार तुम्हारा। हो जाय हमेशा को ख़रीदार तुम्हारा ॥ क्यों उसका कोई तार हो बेतार जो कोई। चिन्तन किया करता है लगातार तुम्हारा ॥ लवलीन हुआ तुम में मिटाकर जो दुई को। तुम यार उसी के हो वही यार तुम्हारा ॥ किस तरह ज़मीं चलती है सूरज के सहारे। देखे कोई आलम में चमत्कार तुम्हारा ॥ फूलों की तरह खिलते हैं दानों में सितारे। आकाश बना गुलशने बेख़ार* तुम्हारा ॥ बुद्धि की पहुँच से भी परे हद तुम्हारी। हां तर्क की सीमा से परे पार तु० ॥ अज्ञेय हो तुम है यही आख़िर को "यथीइज़्म" † इनकार भी आख़िर को है इकरार तुम्हारा ॥

* ग़ज़ल २ *

रहता है तापो तेज तपोबल के हाथ में।
जिस तरह चांदनी महे अकमल ‡ के हाथ में ॥
मिलना न मिलना उनका तो है कल के हाथ में।
पर दुःख है वह कल नहीं बेकल के हाथ में ॥
किसके तलाश की यह लगन है लगी हुई।
बिजली की लालटेन हैं बादल के हाथ में ॥
घेरा है लोभ मोह ने इस तरह जीव को।
जैसे कोई शरीफ़ हो अरज़ल () के हाथ में।

* निष्कण्टक, † नास्तिकवाद, ‡ पूर्णिमा का चन्द्रमा, () कमीना।

निर्लेप आत्म तमोगुण से हुआ मलीन।
हीरा सियाह हो गया काजल के हाथ में ॥
अभ्यास करना पड़ता है अष्टांग योग का।
आता है मोक्ष मार्ग बहुत चलके हाथ में ॥

❀ भजन ३ ❀

अंत समयमें हे जगदीश्वर ! तेराही सुमिरण तेरा ही ध्यान हो।
काबूमें होवें इंद्रिय अपने, वशमें प्राण और अपाण हो ॥ अन्त०
खाली हो चित्त वासनाओं से,
अपने दुःख का न उसमें नामो निशान हो ॥ अन्त०
श्रद्धा से भरपूर मन होवे अपना,
भक्ति की हृदय में उत्कृष्ट स्थान हो ॥ अन्त०
सतही पे निर्भर हों काम अपने,
सतही का अभ्यास सतही की आन हो ॥ अन्त०
जीते हों सत पर मरते हों सत पर,
सत ही का गौरव सत ही का मान हो ॥ अन्त०
भूलें न यम को पालें नियम को,
जीवन में अपने तब ही प्रधान हो ॥ अन्त०
लवलीनहों प्रेममें तेरे ऐसे, सुखकी न सुधहो दुःखका न भानहो ॥अ०

आत्मवेत्ता—( प्रसन्न चित्त के साथ ) अब संघ का कार्य्य समाप्त हुआ—ईश्वर करें

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे पश्यन्तु भद्राणि, मा कश्चित् दुःखभाग भवेत् ॥

अर्थात् सभी सुखी और स्वस्थ हों, सभी मंगल-कामनाओं की पूर्त्ति देखें, और कोई भी दुःखी न हो।

एवमस्तु